फरवरी 2015 वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

ॐ

साधन

फरवरी-2015

अनुक्रमणिका

ॐ

साधन

वेद-मंत्र

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।

उपस्तुतासो अग्नेय ।। — यजुर्वेद 1/12/1

हे स्तुती करने वाले उपासको ! तुम महान सत्य के पालक, यज्ञ के पालक, महान स्वच्छ प्रकाश से युक्त अग्नि (परमात्मा के सद्‌गुरु) के लिए स्तुती का गान करो।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

वर्ष : 82 अंक : 7	फ़रवरी-2015	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

-: सीख :-

हरि बिन जन्म बृथा खोयो रे।

कहा भयो अति मान बड़ाई, धन मद अंध मति सोयो रे।।1।।

अति उतंग तरु देखि सुहायो, सैवल कुसुम सुवासेयोरे।

सोई फल पुत्र-कलत्रविषै सुख, अंति सीस धुनि-धुनि रोयो रे।।2।।

'सुमिरन-भजन' साधु की संगति, अंतरिमन मैल न धोयो रे।

'रामानन्द' रतन जम त्रासै, श्री पति पद काहे न जोयो रे।।3।।

— परम संत श्री रामानन्द जी

अमृत बिन्दु :-

प्रेम

— परमपूज्य श्री गुरुदेव

भक्ति, ज्ञान और योग सब ही साधना प्रेम में जाकर समाप्त होते हैं। प्रेम इन सबकी ऊँची और अन्तिम अवस्था है। प्रेम के हृदय में उदय होते ही दर्शन होता है। परा भक्ति और परा ज्ञान ही का नाम प्रेम है। प्रेम में वासनायें नहीं रहतीं। प्रेम में अपना और अपने से बाहर जगत का ज्ञान नहीं रहता। प्रेम में प्रेम पात्र के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही नहीं देता। जिधर आँख जाती है वहीं अपने प्यारे की मूर्ति ही नजर आती है। प्रेम में मन संकल्प-विकल्प त्याग देता है। प्रेम में बुद्धि विवेक-शून्य हो जाती है, कर्म छूट जाता है, भक्ति या उपासना पीछे रह जाती है। ज्ञान शक्ति निश्चेष्ट हो जाती है। अहंकार का ढूढ़े से पता नहीं मिलता। अन्दर और बाहर आगे और पीछे वही खिलाड़ी दिखाई देता है। उसी का जलवा चारों ओर दृष्टिगोचर होता है।

दर दीवार दर्पण भये, जित देखूँ तित तोय।
कांकर पाथर ठीकरी भये आरसी मोय।।

इस प्रेम के आवेश में आकर भी मनुष्य रोता है, चिल्लाता है, बड़बड़ाता है, हँसता है, आश्चर्य में डूबे हुए की तरह कभी देखता ही रह जाता है, कभी प्रसन्न और कभी उदास नजर आता है। दुनिया वाले उसे दीवाना कहते हैं। प्रेम-मदिरा का नशा उसकी आँखों और मुखड़े से टपकता जान पड़ता है परन्तु यह बहुत ही प्रिय और ऊँची अवस्था है जिसमें सूरत तो मज्ज़ूबों की सी हो जाती है लेकिन दिमाग नहीं फटता, ज्ञान की शक्ति हमेशा के लिए नहीं नष्ट होती। नशा उतरते ही वह मनुष्यता में आ जाता है। होश-हवाश ठीक हो जाते हैं, मगर एक चीज उसमें विशेष रूप से आ जाती है, वह है- साम्यावस्था या समता। इस समता के आ जाने पर न उसे कभी हर्ष होता है, न शोक, न उसके अन्दर किसी के लिए राग रहता है, न द्वेष, न किसी वस्तु में उसे सुख दिखाई देता है, न दुःख। मानो वह माया के द्वन्द्व से छूट कर किसी दूसरे जगत का ही बन गया है। मीरा, चैतन्य महाप्रभु, स्वामी रामतीर्थ, परम हंस रामकृष्ण देव इत्यादि महापुरुष इसी प्रेम लोक के निवासी थे।

कई मनुष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए देवताओं को वशीभूत करने का प्रयत्न करते हैं। उनको देवता बड़ी कठिनाई से सिद्ध हो पाते हैं। निष्काम या परमार्थ के लिए जो देवताओं का भजन किया जाता है वह अवश्य ही सफलीभूत होता है और ऐसों पर देवताओं की कृपा अवश्य होती है।

एक बात हम अपने अनुभव की बतलाते हैं इससे सारे देवता बड़ी जल्दी रीझते हैं। जब चाहो प्रत्यक्ष उनका दर्शन करो, जो चाहो उनसे काम लो। कहने की, प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं ही हर समय रक्षा के लिए, उसके कष्टों को दूर करने के लिए, उसके कामों

को सफल बनाने के लिए तैयार खड़े रहते हैं। सांसारिक और पारमार्थिक, जिस काम में चाहो उनकी सहायता लो, वह बड़ी प्रसन्नता से काम करेंगे। उस समय तुम उनको अपने सम्मुख खुली आँखों देख सकोगे और उनसे बातचीत कर सकोगे और चाहने पर उनके लोगों की सैर को भी जा सकोगे इत्यादि यह है निष्काम प्रेम से भगवद् आराधना। सच्ची श्रद्धा से, पूर्ण भाव से, शुद्ध हृदय से, प्रेम और लगन से नियमपूर्वक जो मनुष्य भगवान के चरणों में लिपटने के लिए चल पड़ता है, अपना तन, मन इनको अर्पण कर देता है उसके लिए किसी भी देवता का अनुष्ठान करने की आवश्यकता ही नहीं होती, उस पर देवताओं की दया अपने आप होती है और हर समय ही उसके स्थान पर देवगणों का दौरा होता देखा जाता है। आदि शक्ति जगदम्बा से लेकर छोटे से छोटे देवता बिन बुलाये उसके सम्मुख आते हैं और उन पर कृपा करते हैं। इसलिए हमारा कहना यही है कि जड़ को पकड़ो, जड़ में जल चढ़ाओ, ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष तब हरा-भरा हो जायेगा और तुम उसका अमृत फल खाके अमर बन सकोगे।

दृष्टांत

उपासना व नजदीकी होते ही उसके आनन्दमयी रूप की जरा-सी झलक मिलते ही मनुष्य एकदम कैसे बदलता है? उसके अज्ञान का पर्दा एक क्षण में कैसे हटता है? इस पर हज़रत मूसा की एक बड़ी अलौकिक गाथा है, वह बड़ी अच्छी तरह इस प्रश्न पर प्रकाश डाल रही है, उसको सुनाते हैं-

हजरत मूसा रास्ते में चले जा रहे थे। उन्होंने देखा एक कुपढ़ और मूढ़ गड़रिया आँख बन्द किये एक वृक्ष के नीचे बैठा कुछ बड़बड़ा रहा है। उसके मुख पर प्रसन्नता है, शरीर निश्चेष्ट है, बाहरी सुधि-बुधि उसकी लुप्त है। हाँ! किसी से बातें करते हुए जान पड़ता है, जैसे सूक्ष्म जगत में कोई उसके सम्मुख खड़ा हो, उसी की ओर उसका पूरा ध्यान है उसी को संकेत कर वह अपनी कहे जा रहा है। मैं क्या कह रहा हूँ, और कोई दूसरा भी वहाँ सुनने वाला खड़ा है, इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है। मानो उसे प्रेम समाधि लग रही हो।

मूसा उसके समीप गये, चुपके से उसकी बातें सुनने लगे। वह कह रहा था- 'या खुदा। मेरा सर्वस्व तेरे अर्पण है, तू अगर भूखा हो तो मेरी सारी भेड़ों का मीठा और स्वादिष्ट दूध पी, अगर तुझे जाड़ा लग रहा हो तो यह मेरा कम्बल ओढ़ यदि तू थक गया हो तो मैं तेरा जिस्म दबाऊँ, तुझे जो कुछ तकलीफ हो तो मुझसे कह मैं उसी को दूर करने का उपाय करूँ। मेरे पास जो कुछ भी है वह तेरा ही है तू उसको भोग और सुखी रह, तेरे किसी भी कष्ट के लिए मेरी जान निछावर है इत्यादि। यह अवस्था ही 'उपासना या हुजूरी' कहलाती है। इसमें समाधि आती है पर मैं और तू की द्वैतावस्था मौजूद रहती है। उपासक अपनी भावना और बुद्धि के अनुसार अपने प्रेम पात्र को देखता है और मनुष्य की तरह उससे वार्तालाप करता है।

हज़रत मूसा बड़े शूरवीर और क्रोधी थे, मिस्र के राजा फरऊन को विजय करने के पश्चात उधर के देशों में उनकी धाक जम गयी थी। अपने इष्टदेव के प्रति ऐसे मूर्खतापूर्ण शब्द उनसे सहन नहीं हो सके, उन्होंने समझा यह मेरे खुदा की बेइज्जती कर रहा है, उसे अपने से भी छोटा और असमर्थ समझ रहा है। कड़क कर बोले- 'ओ हरामज़ादे! क्या बक रहा है, कहीं खुदा को जाड़ा

लगता है, कहीं उसे भूख सताती है, क्या उसे तेरी मदद की जरूरत है? वह तो सारे विश्व का मालिक है, सबको रोजी देता है, सबका पालन-पोषण करता है। खबरदार आइन्दा ऐसी हरकत की तो मैं तुझे जान से मार डालूँगा।'

गड़रिये के कानों में यह शब्द पहुँचे, उसे चेतना आई, समाधि भंग हो गई, मस्ती उतर गयी होश आया, देखा-हजरत मूसा क्रोध में भरे सम्मुख खड़े हैं। भयभीत हो गया, डर से कांपने लगा, पास ही पहाड़ियों का सिलसिला था। वह बड़ी तेजी से उठ के भागा और एक अंधेरी गुफा में जा छिपा। मूसा अपने स्थान पर आये, हाथ-पाँव धोके नमाज पढ़ने लगे। आकाशवाणी हुई-'मूसा तैने बहुत' बुरा किया, जो मेरे प्रेमी को मुझसे जुदा किया। गड़रिये के प्रेम भरे शब्द मुझे बहुत अच्छे लग रहे थे। मूसा मैं भाव का भूखा हूँ, प्रेम से मुझे कोई गालियाँ भी बकता हो तो मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं। प्रेमी को इतना होश कहाँ होता है जो ऊँच-नीच का विचार करे। उसकी मन-बुद्धि और इन्द्रियाँ अपना सारा व्यापार त्याग एकदम मेरी ओर ही खिंच जाती हैं, प्रेम की मस्ती में सुधि-बुधि सब विसर जाती है। वह सब ओर मुझे ही देखता है, मुझे ही आलिंगन करने को दौड़ता है, मुझे पकड़ने को छटपटाता है, जो जी में आता है वह मुझसे बकता है। ऐसे प्रेमियों के अटपटे शब्द मुझे बड़े प्यारे लगते हैं, सदा ही उनको सुनने को उत्सुक रहता हूँ। तू कर्म काण्डी है, प्रेम के मार्ग को क्या जाने, इसलिए यह गलती तुझसे हुई है, आगे कभी ऐसा मत करना।

नाहं बसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

मूसा को एक नयी बात मालूम हुई, अहंकार का पर्दा हट गया, प्रेम के महत्व का उनको पता चला, भाग के उसी स्थान पहुँचे जहाँ गड़रिया बैठा अपने प्रेमी को रिझा रहा था, परन्तु अब वह वहाँ कहाँ था। तालाश करने लगे पता चला एक अंधेरी कन्दरा में छिपा बैठा है। वहाँ भी पहुँचे, आवाज दी और बोले-ऐ गड़रिये, डरै मत, मैं तुझे खुदा का सन्देश सुनाने आया हूँ । वह तेरे उन्हीं शब्दों से खुश था, उन्हीं को फिर खुदा के रूबरू कह, मैंने गलती की थी जो तुझे मना किया।

गड़रिया बोला-'मूसा। अब मैं वह नहीं रहा वह तो उसी वक्त की हालत थी। अब मेरी आन्तरिक स्थिति बदल चुकी है, उस क्षणिक दर्शन ने ही मेरी आँख खोल दी है, मेरे अज्ञान का पर्दा हट चुका है, मेरे विचार, मेरे भाव अब पहले जैसे नहीं रहे अब तो किसी दूसरे लोक का प्राणी बन चुका हूँ । मैं देखता हूँ कि मेरे प्यारे ने मुझे अपना लिया है, आप जाइये और मुझे मेरे चितचोर के चरणों में पड़े रहने दीजिये।

प्रभु का एक मुहूर्त का सत्संग मनुष्य के हाव-भाव और चेष्टा सभी बदल देता है। उसे इस स्थिति से उठा के एकदम कहीं दूसरी जगह ही पहुँचा देता है। उसके अन्दर शान्ति, ढाढस और निर्भयता का संचार कर देता है। प्रसन्नता से उसका मुख खिल जाता है, शोक और अज्ञान उससे परे हट जाते हैं, मोह और ममत्व उसका संग छोड़ देते हैं। किसी से भय नहीं रहता, कोई चिन्ता नहीं सताती। प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक शक्ति, प्रत्येक विभूति उसे अपने अधिकार में ही दिखाई देती है और सिर पर एक महान् शक्तिशाली सर्वेश्वर पिता का हाथ देखता है, इसलिए उसका वह जीवन एक आनंदमय जीवन बन जाता है। ✦✦

सम्पादकीय

कर्मवादी

भगवत् गीता में एक श्लोक आता है जिसमें भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यह ज्ञान मैंने सूर्य को दिया था। हम सब में एक जिज्ञासा पैदा होती है वह क्या ज्ञान है जो भगवान ने सूर्य को दिया और गीता के माध्यम से हम सब को भी देना चाहते हैं। यह एक ऐसा प्रश्न है जो हम आप जानना चाहते हैं। भगवान कृष्ण ने जो ज्ञान सूर्य को दिया है उसमें एक नये मार्ग का प्रतिपादन हुआ है। वह है कर्मवाद। हमारे ऋषियों ने ज्ञान के माध्यम से ईश्वर को जाना, अपने को जाना और अपने कर्त्तव्यों को जाना और इस पर वेद, पुराण, उपनिषद् लिखे। लेकिन भगवान कृष्ण ज्ञान मार्ग से और आगे चलते हैं। संसार में सबमें इतनी तीक्ष्ण बुद्धि नहीं है कि ज्ञान मार्ग से ईश्वर को जानें और अपने कर्त्तव्यों का बोध करें। अत: भगवान कृष्ण ने कहा एक सरलतम् मार्ग है-कर्मवाद। कर्म हम सभी करते हैं। **कर्मण्येवाधिकारस्ते**। यदि हमारा कर्म पूजा हो जाये तो मुझे अलग से पूजा करने की जरूरत नहीं करनी पड़ेगी। मैं कर्म करता रहूँगा पूजा होती रहेगी। यही उपदेश भगवान कृष्ण ने सूर्य को दिया था। अब प्रश्न आता है कि कर्म क्या है? कैसे करें जिससे वह पूजा बन जाए? हमारी कर्म करने वाली इन्द्रियाँ मन के उपकरण हैं। इनसे मन कर्म कराता है। मन अहम् के अधिकार में रहता है। अत: जो भी कर्म करता हूँ उसमें मेरा अहम् लगा रहता है। जहाँ अहम् लगता है वहीं मेरे कर्म का स्वरूप बदल जाता है। मैं कर्त्ता बन जाता हूँ। कर्त्ता बनने से उस कर्म का संस्कार बनता है। संस्कार को भोगना पड़ता है। उसी कर्म के माध्यम से दु:ख, अशान्ति, क्लेश मुझे घेर लेते हैं। यदि मेरा अहम् उस कर्म में न लगे तो मेरा कर्म पूजा बन जायेगा। भगवान कृष्ण ने यही संदेश सूर्य को दिया, अहम् रहित कर्म करो। इससे कर्म में कौशल आयेगा, थकान नहीं होगी, शाश्वत रहोगे और हम देखते हैं कि भगवान कृष्ण का वचन मान कर सूर्य चौबीस घंटे कर्म में लिप्त रहता है, कभी थकता नहीं। कभी उसके कार्य में विघ्न नहीं पड़ता क्योंकि उसने कर्म के दर्शन को समझ लिया, अपने में उतार लिया। उसके कर्म करने के तरीके से एक बात और निकल के आती है। स्वयं तो कर्म करता है और हम से भी कराता है। हम रात्रि में सो जाते हैं, कोई कर्म नहीं करते। सुबह सूर्य निकलता है और कहता है उठो काम करो। और हम देखते हैं इस कर्मवाद को अपनाने से हम जीवन का श्रेयस प्राप्त कर सकते हैं। आवश्यक यह है कि हम इस कर्मवाद का स्वरूप समझें और अपनाएँ। अब प्रश्न आता है कि हम कर्म कैसे करें कि कर्म हमारी पूजा बन जाए। भगवान कृष्ण स्पष्ट करते हुये कहते हैं। कर्मवाद के तीन मुख्य बिन्दु हैं-कर्म, अकर्म ओर विकर्म। मुझे कर्म करना है।

लेकिन जो भी कर्म हो अकर्म हो जाये अर्थात् उस कर्म में मेरा अहम् न लगे। अगर अहम् न लगे तो जो भी कर्म करूँगा उसका संस्कार न बनेगा क्योंकि वह कर्म मेरे माध्यम से तो हुआ पर मैंने नहीं किया। वह कर्म अकर्म हो गया। इसके आगे यह अकर्म की प्रक्रिया इतनी सहज हो जाये कि मेरा कर्म स्वत: दिन रात चलता रहे तो उसे विकर्म कहते हैं। हम आप साधना करते हैं इसका ध्येय यही है कि हम विकर्म की अवस्था में पहुँच जायें। अभ्यास के द्वारा साधना इतनी सहज हो जाए कि - आँख न मूंदूँ, कान न रूँदूँ, काया कष्ट न धारूँ। खुले नैन मैं पिव को देखूँ, अद्‌भुत रूप निहारूँ।।

कर्म इतना सहज हो जाए कि मुझे पालथी मार के बैठना न पड़े, न मुझे आँख बन्द करनी पड़े बल्कि इतना सरल, सहज हो जाए कि हर समय होता रहे। सो रहा हूँ तो, बैठा हूँ तो, काम कर रहा तो साधना चल रही है। जैसे हम सांस लेते हैं। वह कर्म है। आप सो रहे, जाग रहे या काम कर रहे हर समय सांस ले रहे हैं। ऐसे ही जो अकर्म मेरा है इतना सहज हो जाए कि मुझे उसका ख्याल ही न रहे स्वत: होता रहे तो हर कर्म पूजा बन जाएगा। इस अवस्था में जितने भी कर्म होंगे उसके संस्कार नहीं बनेंगे। संस्कार नहीं बनेगा तो फल नहीं भोगना पड़ेगा। न दु:ख होगा, न अशान्ति होगी, न क्लेश होगा, पर इस विकर्म की अवस्था में पहुँचे कैसे? इसका उपाय भगवान कृष्ण कहते हैं, अपने को जानो। अपने को जानेंगे तो यह बोध हो जायेगा कि मैं कर्म नहीं कर रहा हूँ पर मुझसे कराया जा रहा है। जैसे माईक से आवाज आती है। वक्ता बोलना बन्द कर दे तो माईक भी शान्त हो जाता है। माईक माध्यम था। ऐसे ही मैं कर्म नहीं कर रहा, मैं माध्यम हूँ। परमात्मा मेरे माध्यम से संसार में काम करा रहा है। मैं परमात्मा की अभिव्यक्ति हूँ। बोल रहा हूँ जैसा वह बुलवा रहा है। हाथ से काम कर रहा हूँ जैसा करा रहा है। मेरा इसमें अहम् नहीं लगा तो सारा कार्य अकर्म हो गया, संस्कार नहीं बने। लेकिन यह अवस्था आए कैसे? हमें अपने को जानना होगा कि इस अवस्था में स्थित होने के लिये हमें प्रत्यक्ष ज्ञान हो कि मैं क्या हूँ? परमात्मा क्या है? हम दोनों का संबंध क्या है? अगर ये सारे रहस्य खुल जायें तो मैं देखूँगा कि मैं कर्म नहीं कर रहा हूँ परमात्मा मेरे माध्यम से कर्म करा रहा है।

मेरा निर्माण दो तत्वों से हुआ है। प्रकृति और परमात्मा। मैं परमात्मा हूँ लेकिन प्रकृति के परदे मेरे ऊपर चढ़ते चले गये- मेरे मन पर, मेरे बुद्धि एवं अहम् पर। मन में बहुत विचार आ गये, बुद्धि में ज्ञान भरा है और अहम् में 'मैं-मेरा' 'तू-तेरा' भर गया। आप देखते हैं प्याज। ऊपर के पत्ते खराब हो जाते हैं तो वह पत्ते निकाल दिये जाते हैं और शुद्ध प्याज निकल आता है। ऐसे ही आपके मन, बुद्धि और अहम् के ऊपर परदे पड़े हुए हैं। इन परदों को हटाना है। मन और बुद्धि के परदे हट जायेंगे तो विशुद्ध मन और बुद्धि निकल आयेंगे। अहम् के परदे हट जायेंगे तो शुद्ध अहम् निकल आयेगा और परमात्मा का मन प्रगट हो जायेगा। परमात्मा की बुद्धि प्रगट हो जायेगी। परमात्मा का अहम् पैदा हो जायेगा हमारे अन्दर। तब मेरे सारे कर्म विकर्म हो जायेंगे। अब प्रश्न आता है यह प्रकृति के परदे हटें कैसे? इसका एक उपाय बतलाया। हमें किसी ऐसे व्यक्ति की शरण में जाना पड़ेगा जिसके परदे हटे हुये हैं। मुख्य परदा है केवल अहम् का जिसमें मन, बुद्धि लिप्त है।

जैसे सागर मन्थन से उत्पन्न विष को भगवान शंकर ने पान कर के देवताओं को अमृत पाने में सुलभ कराया था उसी तरह हमें भी किसी सद्गुरु के शरण में जाना होगा जो हमारे प्रकृति प्रदत्त अहम् के विष को पान कर लेगा और हमारे सारे परदे खुल जायेंगे। जैसा कहा गया,– 'बिनु गुरु भवनिधि तरइ न कोई।'

बिन गुरु के शरण गये हृदय का मंथन होगा नहीं। मंथन करेंगे तो विष निकलेगा। गुरु साथ होंगे तो वह विष पान कर लेगा। कैसे हो यह हृदय का मंथन? इसका उपाय गीता में आता है। भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं बिना आत्मा में स्थित हुए तेरी शंका का समाधान नहीं होगा। मैं तेरे हृदय का मंथन करना चाहता हूँ। तेरे मन, बुद्धि और अहम् पर जो परदे आ गये उन्हें हटाना चाहता हूँ। हटाऊँ कैसे? जैसे ऑपरेशन के समय डॉक्टर मरीज को एनेस्थीसिया देता है ताकि मरीज अपने को डॉक्टर को सौंप दे उसी तरह भगवान कहते हैं अर्जुन तुम अपने को सौंप दो– **'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'** तू मेरा मन वाला हो जा। जुड़ जा मुझसे। **''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।** सभी भावों से जुड़ जा मुझसे। हमारी साधना यहाँ से शुरू होती है। भगवान कृष्ण के कहे अनुसार हम कैसे सौपें अपने गुरु को। कैसे हमारा मन गुरु का हो जाए। कैसे मेरी बुद्धि जुड़ जाए उससे। उसका समाधान हमारे गुरु महाराज ने किया है। उन्होंने कहा उनसे जुड़ने का काम उनका है। हममें अर्जुन की क्षमता नहीं है कि हम गुरु के मन वाले हो जायें, उनसे जुड़ जाएँ। हमारे गुरु महाराज ने कहा जब तुम मेरे पास आके बैठोगे तो मैं बड़े सहज से तुम्हारे मन में, तुम्हारी बुद्धि में प्रवेश कर जाऊँगा। उन पर पड़े प्रकृति के पर्दे को हटा दूँगा। मेरे मन और अहम् से प्रकृति का परदा हट गया तो परमात्मा का अहम् प्रकट हो गया। उस अहम् से मुझे ज्ञान हो गया कि मैं भी परमात्मा हूँ । देख लिया 'मैं' और संसार के सारे जीव जन्तु वही परमात्मा हैं। अब मैं उस वास्तविक अहम् से सारे काम करता हूँ। अब परमात्मा का मन, उसकी स्मृति प्राप्त हो गई। स्मृति यह कि मुझे बोध हो गया कि मैं भी वही परमात्मा हूँ और अब जो भी काम कर रहा हूँ परमात्मा के मन से कर रहा हूँ। मेरा प्रकृति वाला मन, बुद्धि, अहम् शान्त हो गया। अब जो भी काम करेंगे उसका फल नहीं होगा, कोई संस्कार नहीं बनेगा और यही कर्म पूजा बन जायेगी। आप खेती या नौकरी करते हैं तो वे काम पूजा हो गई। आपने पढ़ा होगा सदन कसाई के बारे में। कसाई था, कर्म था पशु को काटना। पर वह कार्य उसकी पूजा हो गई क्योंकि वह परमात्मा के मन से कर रहा था। उसका अहम् काम नहीं कर रहा था। कोई संस्कार नहीं बन रहा था। अर्जुन युद्ध कर रहा था, लोग मर रहे थे पर उसका कोई संस्कार नहीं बना था क्योंकि भगवान कृष्ण से जुड़ने के बाद उसको ज्ञान हो गया था कि वह तो रंगमंच में खेल खेल रहा परमात्मा के इशारे पर। ऐसे ही गुरु महाराज ने कहा साधना आपको वहाँ ले जायेगी जहाँ आप अपने मन को, बुद्धि को और अहम् को मुझे सौंप देंगे। उन पर चढ़े प्रकृति के पर्दे हट जायेंगे, व्यवहार बदल जायेगा। न राग होगा, न द्वेष और न घृणा होगी, संसार सुखमय हो जायेगा। आपको सबसे प्रेम हो जायेगा और सब आपको प्रेम करेंगे। हमारी साधना का ध्येय यह है। ✦✦

प्रवचन-पराग :-

अपने अन्दर झाँकिए

– परम भागवत परम संत पं. मिहीलाल जी

[उपर्युक्त लेख में कुछ ऐसी उपयोगी बातें लिखी हैं जिससे हमारी परीक्षा बराबर हो सकती है। प्रत्येक भक्त को इससे लाभ उठाना चाहिए। यह लेख हमारे लिए थर्मामीटर का कार्य करेगा.....सं.]

जीवन के कितने ही बरस यों ही गुजर गये, नया साल भी आ गया। आप अपनी स्थिति को देखिए और कमी पूरी कीजिये।

साधना करते-करते आप के अन्दर प्रेम पैदा हुआ है या नहीं, और हुआ है तो कैसा है? कहीं प्रेम के स्थान पर मोह तो नहीं बढ़ रहा है?

आपको अपने बच्चों और दूसरों के बच्चों में विशेष अन्तर तो नहीं दिखायी दे रहा है? यदि सभी अपने जैसे लगते हैं तो समझो कुछ प्रेम का संचार हो रहा है।

सेवा करने के बजाय सेवा लेने का रोग तो पैदा नहीं हो गया है? इस रोग की रोकथाम अच्छी तरह कर रहे हैं या नहीं?

कहीं और किसी तरफ से अभिमान तो सिर नहीं निकाल रहा है? आप उस पर पूरी निगरानी किये हैं या नहीं क्योंकि वह बहुत छिप कर आता है।

यह बात दूसरी है कि आपके अन्दर कुछ अच्छे गुण हों, पर कहीं उन्हें दूसरों को दिखाने का प्रयत्न तो नहीं हो रहा है। यदि ऐसा है तो इससे बचने का प्रयत्न करो, 'दर्प' इसी को कहते हैं।

जो बात आपमें नहीं है उसे दूसरों के सामने झूठ-मूठ दिखाने का नाटक तो नहीं कर रहे हैं? इसे 'दंभ' कहते हैं जो बहुत बड़ा दोष है।

जो बात गुरु ने आप से कही है, उसे दूसरों से कह देने में कोई हर्ज नहीं है, पर कहीं अपनी बड़ाई के लिए ऐसी बात तो नहीं कह देते हैं जो उन्होंने न कही हो? यह बहुत बड़ा अपराध है जो हृदय को काला कर डालता है। पिता और गुरु का दर्जा बहुत ऊँचा है। तुम कभी उनकी बराबरी नहीं कर सकते, कितने ही विद्वान और ज्ञानवान हो जाओ। परन्तु कहीं जीवन में ऐसी भूल तो नहीं कर बैठे हो जो अपने को उनके समान समझने लगे हो? यदि ऐसा है तो उसका प्रायश्चित करो।

कहीं और कभी आपने गुरु माता को अपने गुरु से कम तो नहीं समझा है, यदि ऐसा है तो साधना में पूर्ण सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के अभिन्न अंग हैं।

क्या अभिमान वश किसी से कड़ा शब्द तो नहीं बोलते हो, भले ही वह अपना पुत्र ही क्यों न हो।

जहाँ तुम्हारी अधिक प्रतिष्ठा होती है, वहाँ बार-बार जाने की इच्छा तो तुम्हारे अन्दर नहीं जाग उठती? यदि ऐसा है, तो साधना में बहुत बड़ी कमी है। श्री गुरु महाराज के न रहने पर भी उस स्थान से हमारा प्रेम वैसा ही बना हुआ है या नहीं? यदि प्रेम ऐसा है तो ठीक है, नहीं-तो पूरा करो।

अपने सत्संगी भाईयों से पूरा प्रेम है परन्तु अन्य मनुष्यों से द्वेष को निकाल फेंको। तुम्हारा दायरा सीमित नहीं होना चाहिए। विश्व प्रेम की ओर बढ़ने का सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए। जो वस्तु श्री गुरु महाराज ने तुम्हें सौंपी है, क्या वह कम तो नहीं हो रही है? उसे बढ़ाते ही चलो क्योंकि एक न एक दिन वह अवश्य ही इसका हिसाब लेंगे। ✦✦

सुधा-सार :-

राग और प्रेम

- नवनीत हृदय परम संत श्री डा. बृजेन्द्र कुमार जी

बहुधा लोग राग को ही प्रेम समझने लगते हैं । हमारे मन का झुकाव जिस ओर को हो जाता है वह सब हमारे अन्तर्मन में बस जाता है । जो लोग हमारे विचारों से मेल खाते हैं उनके प्रति सहज ही आकर्षण हो जाता है । उन्हीं के साथ उठना-बैठना, उन्हीं से बात चीत करना, उनके न मिलने पर परेशान हो जाना, यह सब अनायास होने लगता है । परन्तु जहाँ राग है, वहाँ द्वेष भी सहज ही छुपा बैठा है । जब तक निर्वाह ठीक तरह से होता चलता है तब तक सब कुछ अच्छा लगता है, सब खुश रहते हैं पर जहाँ उसमें तनिक भी बदलाव हुआ कि राग ने द्वेष का रूप पकड़ा। द्वेष उत्पन्न होते ही वे ही बातें और भी गहरी चली गईं, उन्होंने चित्त तक अपनी चादर फैला दी और जो आत्मा का प्रकाश हम ले रहे थे उसे बादल बन ढाँप दिया । अब हमारे आगे अन्धकार है, अज्ञान है, अशान्ति है, यह सब हुआ उस 'राग' के कारण जिसे आपने 'प्रेम' का नाम देकर पाल लिया था ।

प्रेम और राग में अन्तर है । प्रेम एक अंग की ओर नहीं देखता । उसकी दृष्टि विश्लेषण की ओर नहीं- संश्लेषण की ओर होती है, वह व्यक्ति सौन्दर्य को न देखकर समष्टि सौन्दर्य को देखता है । किसी परिवर्तन के कारण उसमें परिवर्तन नहीं हुआ करता इसलिए प्रेम करने वाला व्यक्ति मिला रहने पर भी इतना अलग रहता है कि दूसरी ओर के परिवर्तन उसमें क्षोभ उत्पन्न नहीं कर पाते । सच्चा प्रेम दूसरे का हित चाहता है । उनके कल्याण की ओर उसे लगाता है परन्तु यदि दूसरा लापरवाही या बेरुखी दिखाता है तो वह तुरन्त अलग भी हो जाता है । इससे उसके अपने चित्त में कोई सिलवट नहीं आती।

साधना में प्रवेश करने पर हमारा झुकाव स्वभावत: उन लोगों की ओर हो जाता है जो इस ओर चल रहे हैं, यह अच्छा है कि हम अपने ही विचार वालों से मिलें-जुलें पर इतना अवश्य देखते रहना चाहिये कि उनके मिलन का विचार मन का बन्धन न बन जाये। मन के इन बन्धनों को तो हम तोड़ने ही चले थे और फिर इन्हीं में आ बंधे । प्रेम आत्मा का प्रकट रूप है। जैसे आत्मा में कहीं मिलावट नहीं है, वहाँ तो एक आह्लादिनी शक्ति है, इसी तरह प्रेम में भी कहीं बनावट नहीं। जहाँ है समझ लो यह राग है, प्रेम नहीं । यदि किसी परिवर्तन से हमारे अन्दर हमारी आन्तरिक शान्ति में क्षोभ उत्पन्न हो गया तो समझना चाहिये कि हम राग को ही प्रेम कह कर पकड़े हुए थे ।

प्रेम सबसे मिला रहता है और सबसे अलग रहता है । पर यह सब होना स्वाभाविक है । यदि बनावट से जान बूझ कर हम किसी से अलग होते हैं और अपने को वैरागी समझते हैं तो यह हमारे अन्दर का द्वेष है। दोनों ही दशायें हमारे लिए अच्छी नहीं । यदि आपके व्यवहार से दूसरों को

उदासीनता मालूम हुई तो भी आप आत्मा के निकट नहीं पहुँचे और न पहुँच सकेंगे । व्यवहार कुशलता प्रेम का लक्षण है । जब तक भगवान गोपियों के बीच रहे खूब रास रचाये गये पर जब चले गये तो वहाँ के हो गये । जिस दशा में हैं जिनके बीच हैं उन सब में फैले हैं, सबमें प्रेम है और जब नहीं हैं तो अपने में स्थित हैं-यह होनी चाहिये साधक के मन की स्थिति । हमारा सम्बन्ध उससे हो, जहाँ कोई परिवर्तन नहीं- कोई घटाव-बढ़ाव, उतार-चढ़ाव नहीं । तभी राग और प्रेम का अन्तर हम समझ सकेंगे, तभी व्यवहार और परमार्थ हमारी समझ में आवेगा । ✦✦

ऐसी विद्या किस काम की

— **परम पूज्य श्री गुरुदेव**

आदमी बन्धन की बात करता है और बन्धन से छूटने की भी बात करता है परन्तु मजे की बात यह है कि जो इस बन्धन को समझने वाली बुद्धि है वह स्वयं बन्धन में है । एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति हो, सब जानता हो, फिर भी यह कहना मुश्किल है कि वह बुद्धिमान भी है, क्योंकि बुद्धि और विद्या में बहुत अन्तर है । संसार में विद्वान बहुत हुये बुद्धिमान कम ।

संसार आज जिन महापुरुषों की पूजा कर रहा है, वे कुछ पढ़े लिखे नहीं थे । महात्मा ईसा बढ़ई थे, लकड़ी का काम करते थे । हजरत मोहम्मद साहब बकरियाँ चराते थे- जिन्हें दुनिया आज पैगम्बर कहती है अर्थात् ईश्वर का सन्देश देने वाले । स्वामी रामकृष्ण परमहंस अधिक पढ़े लिखे नहीं थे । कबीर, नानक आदि आज रिसर्च के विषय बने हुये हैं, कारण कि यह सब बुद्धिमान थे । पढ़ा-लिखा ज्ञान सांकेतिक ज्ञान है ।

बुद्धिमान बनने के लिये उस विद्या का सहारा लेना पड़ेगा जिसे आत्म विज्ञान कहते हैं-जिससे मनुष्य इस संसार चक्र को समझ ले, दुनिया के खेल को जान जाय कि कैसे खेला जाता है । तभी मनुष्य शान्ति के साथ संसार में रह पाता है और आनंद से जीवन व्यतीत कर जाता है ।

इस ज्ञान को प्राप्त करनेवाले आदमी की नजर ही कुछ और हो जाती है । वह कहता है:-

अब आदमी कुछ और ही मेरी नजर में है ।
जब से देखा है यार लिबासे बशर में है ।।

[**नोट**- पढ़े लिखे कहते हैं "जब से सुना है यार" परन्तु आत्म विज्ञानी कहते हैं" "जब से देखा है यार-" सं.]

"जिसमें दूसरों की पीर नहीं है, जो दूसरों को अपमानित कर प्रसन्न होते हैं, जो कठोर हृदयवाले हैं उनसे दूर रहो । अवसर पड़ने पर भी कभी इनके सामने हाथ न फैलाओ उन्हें मुर्दा समझो क्योंकि जल्दी ही ईश्वरी कोप उन पर होने वाला है ।

✦✦

-: लोभः पापस्य कारणम् :-

— श्रीयुत् प्रभुदयाल शर्मा

महात्मा गाँधी लिखते हैं-'आदमी की आवश्यकतायें तो पूरी की जा सकती हैं किन्तु उसके लालच को पूरा करना सम्भव नहीं है। लोभ हमारी आत्मा को जकड़ लेता है और हमारे रिश्तों को तार-तार कर देता है' महाभारत अनुशासन पर्व में कहा गया है- **'नास्ति तृष्णा समं दुःखं, नास्ति त्याग समं सुखम्'**- लोभ शब्द की उत्पत्ति 'लुभ्' धातु तथा 'घज' प्रत्यय के योग से हुई है, जिसका अर्थ है लालच, लिप्सा और लालसा, यह ऐसी मानवीय इच्छा है जिसकी पूर्ति हो जाने के बाबजूद उसे कभी पूर्ण तृप्ति अथवा सन्तुष्टि नहीं मिलती, व्यक्ति को ज्यों-ज्यों लाभ होता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता चला जाता है- 'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई' इस प्रकार लाभ से लोभ में निरन्तर वृद्धि होती चली जाती है, व्यक्ति का लाभ कब लोभ में परिणत हो जाता है, पता ही नहीं चलता, वस्तुतः सब अनर्थों का मूल लोभ है, साथ ही यह अनेक प्रकार के संकटों का कारण भी हो जाता है, जो मनुष्य अज्ञातवश काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, उसे इच्छा न रहते हुये भी विभिन्न वासनाओं के अनुसार अनेक कर्म करने पड़ते हैं। वैसी स्थिति में वह रेशम के कीड़े के समान अपने को कर्म के जाल में जकड़ लेता है और इस प्रकार अपने ही हाथों मोह का शिकार बन जाता है। काम, क्रोध, लोभ नरक के तीन द्वार बतलाये गये हैं।

'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्रयं त्यजेत्।।

गीता 16/21

काम, क्रोध तथा लोभ-ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसको अधोगति में ले जाने वाले हैं। मनुष्य कामनाओं का एक क्रीत दास की तरह ही होकर रह गया है, ये असंख्य कामनाओं का संसार कभी उसकी दृष्टि से ओझल ही नहीं हो पाता है, इन अनगिनत कामनाओं की पूर्ति का लोभ संवरण नहीं कर पाता है, इन्हीं के इस चक्रव्यूह में फँसा रहता है। एक कामना पूरी हुई नहीं कि अनेक समक्ष आ उपस्थित होती हैं, इन कामनाओं की पूर्ति न देख मनुष्य क्रोध के वशीभूत हो जाता है। ऐसा लोभी व्यक्ति तो उस गधे की तरह ही है जो धन को अपनी पीठ पर लाद कर तो चलता है किन्तु उसका उपभोग नहीं कर सकता, उपभोग तो दूसरे ही करते हैं, ऐसे ही हम सबका मन लोभी, चित्त धन सम्पत्ति कांचन आदि की प्राप्ति में पागल हो रहा है, मान बड़ाई आदि के पीछे दौड़ रहा है, जब तक हम लोगों का यह काम और

लोभ सब ओर से सिमट कर एकमात्र प्रभु के प्रति नहीं हो जाता है तब तक हम उस प्रभु का वह प्रेम भी कैसे प्राप्त कर पायेंगे। इस लोभ की पूर्ति कभी नहीं हो पाती इसलिये लोभ के साथ क्षोभ सदा बना रहता है, लोभ तो हमारे मनोभावों पर अमर बेल की तरह छा जाता है। वस्तुतः सब अनर्थों का मूल लोभ है, 'सर्वास्त्वन्द्रिय लोभेन सङ्कटान्यवगाहते' पद्म पु. 19।258 अनेक प्रकार के संकटों का कारण लोभ ही होता है। लोभ की स्थिति तो यह है जैसे लकड़ी अपने ही भीतर से प्रकट हुई आग के द्वारा जलकर नष्ट हो जाती है वैसे ही जिसका मन वश में नहीं हुआ है, वह पुरुष अपने साथ ही पैदा हुई लोभ की वृत्ति के कारण नाश को प्राप्त हो जाता है।

'तात तीनि अतिप्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ।।
लोभ कें इच्छा दंभ बल काम के केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं विचारि।'

(रा.च.मा. अरण्य 38-क ख)

वस्तुतः लोभ तृष्णा का पार नहीं है और उसका पूरा होना भी दुःसाध्य है। तृष्णा लोभ में सैकड़ों दुःख हैं और बहुत से अधर्मों से युक्त है। इसलिये किसी भी प्रकार से इनका त्याग करना आवश्यक है, मनुष्य मोह वश हो कुछ वस्तुओं में ममत्व कर बैठता है और ममत्व की वे वस्तुयें नहीं मिलती हैं तो वह दुःखी हो उठता है। संसार के इन अनित्य पदार्थों में यदि मनुष्य ममत्व का आरोप न करे तो इनके आने जाने में उसे हर्ष और शोक के विकार से सहज ही छुटकारा मिल जाय। भागवताकार व्यास जी तो यहाँ तक लिखते हैं कि जितने से पेट भर जाय, उतनी वस्तु मनुष्य की है अभिप्राय यह है कि जितने से प्यास मिट जाये उतना जल, जितने से शरीर का निर्वाह हो जाये उतना वस्त्र और मकान यह अपना है। इसके सिवाय अधिक धन अन्न जल वस्त्रादि सामग्री है उसे जो अपना मानता है वह चोर है।

'यावद् भ्रियते जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्यते सस्तेनो दण्डमर्हति।।'

श्रीमद्भागवत 7।14।8

इतना सब जानते हुये मनुष्य काम क्रोध लोभादि से बच कहाँ पाता है? महान् योगी भर्तृहरि जी महाराज सब कुछ राज पाट छोड़ वनों में शांति की तलाश में घूमते रहते थे। एक बार रात्रि में गाँव के समीप होते हुये जा रहे थे, चाँदनी रात थी एक वृक्ष की छाँव में एक बहुत ही लाल रंग का कोई रत्न सा दिखाई दिया वे आगे देखते हुये बढ़ गये। मन ने सोचा कि कोई अमूल्य रत्न है उठा लें परन्तु अंतर की आवाज़ सी सुनाई दी कि हमें क्या करना है परंतु मन फिर आग्रह सा करता हुआ कहता है कि किसी को दे देंगे, बस मन की बात मानते हुये उठाया तो हाथ सन गया, देखा वह तो किसी की पान की पीक थी, बड़ा पश्चात्ताप हुआ, दुःखी हुये। ऐसे ही यह लोभ ऐसे महापुरुषों को भी भ्रम में डाल देता है।

'लोभः पापस्य कारणम्' लोभ को पाप का जन्मदाता बताया गया है। मनुष्य माया मोह तथा लोभ लालच की इस चकाचोंध में इस तरह डूब गया है कि उसे शाश्वत सत्य की अनुभूति ही नहीं होती। व्यक्ति हरक्षण हर पल लालसा की अग्नि में दहकता रहता है, संसार में लोभ से तुच्छ असार

और विनाशकारी तत्त्व और नहीं है । ये मनुष्य के अन्तर में रजोगुण से ही उत्पन्न होने वाले हैं भगवान् गीता में काम क्रोध के विषय में बतलाते हैं-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।

गीता 3।37

रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खाने वाला अर्थात् भोगों से कभी न अघाने वाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषय में वैरी जान, आगे फिर कहते हैं- जिस प्रकार धुएँ से अग्नि और मैल से दर्पण ढक जाता है और जिस प्रकार जेर से गर्भ ढका रहता है वैसे ही उस काम के द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है, ये षडविकार काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर (ईर्ष्या) मानव के शरीर के शत्रु हैं। जो व्यक्ति एक बार इनके इस चक्रव्यूह में फँस गया वह लाख प्रयत्न करके भी इनके इस लौह पाश से निकल नहीं पाता, जो लोग विवेकशील होते हैं वे इनके निकट नहीं जाते।

बड़े भाग मानुस तन पावा।
सुर दुरलभ सब ग्रन्थनि गावा।।"

मानव जीवन का उद्देश्य ही हमने भुला दिया है, पहले हमें इस जीवन के उद्देश्य को जानना होगा परन्तु कामनाओं के झंझावात में उद्देश्य तो विलीन ही हो गया है और हम संसार के ही होकर रह गये हैं। संसार के इस मायावी चकाचोंध में हम अपने में खो से गये हैं। परम भागवत पण्डित जी महाराज लिखते हैं- संसार को भोगने से पहले तुम संसार भोगने योग्य तो हो जाओ नहीं तो यह संसार ही तुम्हें भोग डालेगा, कच्चे घड़ों को कुछ समय घनी आग में रक्खा जाता है तब वह अपने में जल ठहरा सकते हैं नहीं तो वह जल ही उन्हें गला देगा, नष्ट कर देगा। वस्तुतः हमारा मन ही धोखे का सूत्र है, वहाँ से ही सारा प्रपंच निकलता है। उसकी जो भी मानें वह झूठ ही मनवायेगा, मन माया है और उसके सब उत्तर भी व्यर्थ हैं। किसी ने मनुष्य की स्थिति कैसी है, उसके विषय में लिखा है खुद कमाओ खुद खाओ यह मानव की प्रकृति है, कमाओ नहीं छीनकर खाओ-यह मानव की विकृति है। खुद कमाओ दूसरों को खिलाओ - यह हमारी संस्कृति है।

वस्तुतः हम अपनी उस संस्कृति को भूल बैठे हैं जहाँ दूसरों के कल्याण के लिये महात्मा दधीचि जैसे दानी ने अपनी अस्थियाँ ही दान कर दीं, महाराजा शिवि ने एक कबूतर जैसे जीव की रक्षा के लिये अपने को ही भेंट कर दिया, बाबा फरीद की वाणी है - 'अल्लाह से प्रेम करो, यदि उसमें समा जाओगे तो उसी के रूप के हो जाओगे। शुक्राना ही खुदा का नज़राना है, अपनी रोटी ईमान की कमाई से खाओ, मिली हुई भेंट को जरूरत मंदों में बाँट दो, धन दौलत सुन्दरता सांसारिक यश आदि के नशे में बहके हुये लोग जीवन की लड़ाई हार जाते हैं। खुदा रहमत का स्रोत है वह गुनहगार इंसान को भी बन्धन मुक्त कर सकता है। प्रभु प्रेम और सांसारिक लोभ दिन रात की तरह बिपरीत हैं। अपने अहं को सदगुरु के चरणों में विसर्जित कर दो।' यही तो जीवन लाभ है क्या हमारे मन में ऐसे अद्वितीय लाभ के लिये लोभ आया है? क्या हम ऐसे लोभ के

इच्छुक हैं? क्या ऐसे लाभ को न चाह कर सांसारिक लाभ का ही लोभ विकसित हुआ है जीवन में, यदि ऐसा ही है तब तो जीवन का उद्देश्य जाना ही नहीं, जीवन व्यर्थ ही व्यतीत हो गया, और 'अब पछिताये का होत है जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत'। संत तुलसी दास जी महाराज की वाणी जीवन में सबसे बड़ा लाभ है उस परमात्मा के प्रति प्रेम 'अस अभिमान जाय जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।' भगवान् कृष्ण उसी लाभ के प्रति संकेत कर रहे हैं -

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।'

गीता 6।22

अर्थात् जो परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्म प्राप्ति जिस अवस्था में योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता। संत तुलसीदास जी भी उसी परम लाभ का संकेत कर रहे हैं-

'कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।'

रा. च. मा. 130।ख

हे गुरो! उसी के लिये प्रार्थना है कि हम सबके अंतर में भी आपके श्रीचरणों के प्रति प्रेम-लोभ निरंतर विकसित होता रहे।

✦✦

प्रेरक-प्रसंग :-

घर में रहकर भी विरक्त होने का मार्ग

एक नरेश की एक महात्मा पर श्रद्धा हो गई। एक दिन नरेश ने संत से सेवा का महत्व सुना, तो अपने ढंग से सेवा करने में वह जुट गए। उन्होंने महात्मा के लिए अपने राजभवन के समान भवन बनवाया। अपने उद्यान जैसा मोहक उद्यान लगवाया। महात्मा की सेवा में उन्होंने अपनी सवारियों जैसी सवारियां, हाथी, घोड़े आदि रख दिए। इसके अतिरिक्त सेवक, शय्या, वस्त्र एवं दूसरी सब सुख-सुविधाएं उन्होंने महात्मा के लिए वैसी ही जुटा दीं, जैसी उनके पास थीं।

एक दिन नरेश महात्मा के साथ घूमने निकले। उन्होंने पूछ लिया, भगवन अब आपमें और मुझमें अंतर क्या रहा, संत ने समझ लिया कि राजा भौतिक सुख-सुविधा को महत्ता देकर प्रश्न कर रहे हैं, किन्तु कोई उत्तर न देकर वह बोले, तनिक आगे चलो, फिर बताऊंगा।

चलते-चलते काफी देर हो गई। महात्मा रुकने का नाम नहीं ले रहे थे, जबकि राजा थक चुके थे। उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा, भगवन, कितनी दूर चलेंगे। अब लौटना चाहिए। हम लोग नगर से दूर निकल आए हैं। संत ने जवाब दिया, अब लौटकर ही क्या करना है? मेरी इच्छा तो लौटने की है नहीं। चलो, वन में चलें। वहां भगवान का भजन करेंगे। सुख तो बहुत दिन भोग चुके।

राजा ने घबराकर हाथ जोड़े और कहा, भगवन, मेरा परिवार है, बीवी है, बच्चे हैं और राज्य की भी मैंने कोई व्यवस्था नहीं की है। वन में रहने जैसा साहस भी अभी मुझ में नहीं है। मैं इस प्रकार कैसे चल सकता हूं? यह सुनकर संत हंसे और कहा, राजन, मुझमें और तुममें यही अंतर है। बाहर से एक जैसा व्यवहार रहते हुए भी हृदय का अंतर ही मुख्य अंतर होता है। भोगों में जो आसक्त रहता है, वह वन में रहकर भी संसारी है, और जो उनमें आसक्त नहीं, वह घर में रहकर भी विरक्त है।

कल्याण का सत्कथा अंक

विनती

— श्री धीरेन्द्र ठाकुर

बहुयुग बीते तरसे हिया,
गुरु हृदय-कुञ्ज में आइये ।।
गुरु-दर्शन की लौ इक लागी,
नयनन्ह गेह बनाइये ।।गुरु हृदय.।।
जनम-जनम भटकत ही बीते,
अब ना अधिक भटकाइये ।।
बना बिन्दु-वत् संस्कारों को,
पल-छिन में भुगताइये ।। गुरु हृदय कुंज।।
श्रद्धा-भक्ति विश्वास, प्रेम प्रभु,
परम प्रगाढ़ बनाइये ।।
मैं अति-दीन बंधु दीनन्ह तुम,
सुधि ना नाथ बिसराइये । । गुरु हृदय-कुंज।।
हों व्यवहार में साकार गुरु-गुण,
चमत्कार दिखलाइये ।।
समदर्शी गुरु नाम तिहारो,
अपनेपन अपनाइये ।। गुरु हृदय कुज ।।
तरसे हैं नयना गुरु-दर्शन को,
अब ना अधिक तरसाइये ।।
तड़पे 'आत्मा' गुरु में मिलन को,
अब ना अधिक तड़पाइये ।। गुरु हृदय.।।

◆◆

मनुष्य और मनुष्यता

— श्री लखपति सिंह

मनुष्यता बड़ी ऊँची चीज है, देवत्व से भी महान चीज है । मनुष्यता में देवत्व से ऊँची सामर्थ्य होती है, इसीलिये कई बार देवत्व को मनुष्यता के आगे झुकना पड़ा है । देवों का स्थान इस धरा-धाम से ऊपर जरूर है, सुविधायें भी बेहतर हैं, मगर मनुष्यता जितनी निर्विकार, निश्छल, सरल, पवित्र और उदार रही है, देवत्व उतना कभी नहीं रहा । कद बढ़ा लेना और बात है, और गुणवान होना और बात है । मनुष्यता में शरीर बड़ा नहीं होता, आत्मा महान होती है । उसके पास धन-वैभव का अम्बार नहीं होता है, वह मान सम्मान की भूखी नहीं होती, वह तो दूब सी विनम्र होती है। चरणों की धूल होती है । मगर गंगा सी पवित्र होती है, सत्य से भरपूर होती है । इस संसार में यदि कोई दुर्लभ चीज है तो वह मनुष्यता ही है । देखने में यह दुनिया मनुष्यों से भरी पड़ी है, मगर मनुष्यता बहुत खोजने पर कहीं-कहीं दिखायी देती है । अँधेरे में कहीं-कहीं दीपक का उजाला दीख जाता है, मगर इतनी सी मनुष्यता ही विश्व को थामे हुए है । सारा जहान, सारा जीवन इसी के मधुर जल से सिंचित होकर पल्लवित और विकसित हो रहा है। संसार का सारा सौंदर्य इसी का चमत्कार है ।

मनुष्य जन्म पाने के लिये लोग लालायित रहते हैं, उसके लिये भजन-भक्ति, जप-तप करते हैं, मनुष्य जन्म पाकर मनुष्यता को पाने या अपनाने के लिये कुछ नहीं करते । वे सोचते हैं कि दो हाथों-पाँवों वाला मनुष्य का हाड़-मांस का शरीर मिल गया तो वे मनुष्य हो गये, मगर यह भारी भूल है । जो वस्तु हो उसमें उसके गुण भी होने चाहिये । खटाई में खट्टापन न हो, गुड़ में मिठास न हो तो वस्तु किस काम की ? शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य की वास्तविक पहचान उसका धर्म ही है । धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान है । सारी बातें जैसे भोजन, शयन, मैथुन आदि मनुष्यों और पशुओं में एक समान ही हैं, सिर्फ एक धर्म ही है जो मनुष्य को पशु से अलग करता है । मनुष्य का धर्म है—सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, तप, त्याग, करुणा, दया, क्षमा, प्रेम, संयम, सेवा, सादगी, सरलता, शुचिता, निश्छलता, समानता आदि । इन गुणों से विभूषित होकर ही मनुष्य मनुष्य बनता है। इनके बिना आदमी ताड़ की तरह लम्बा तो हो सकता है, पर एक पंथी को छाया नहीं दे सकता, वह समुद्र की तरह वैभव से भरा-पूरा हो सकता है मगर किसी भूखी आत्मा को जुड़ा नहीं सकता। जहाँ मनुष्यता होती है, वहाँ जीवन इतना हरा-भरा छायादार और खुशहाल होता है कि लोग अनायास उधर को आकर्षित हो

शान्ति और आनन्द के लिये दौड़ पड़ते हैं ।

महाराज शिवि की दान वीरता से देवेन्द्र को भय हो गया कि उनका सिंहासन छिन जायेगा तो उन्होंने उनका दानव्रत भंग करने के उद्देश्य से कठिन परीक्षा की योजना बनायी । उस कठिन परीक्षा में महाराज शिवि सफल हुए । उन्होंने शरण में आए हुए एक पक्षी की जान बचाने के लिये अपने शरीर का मांस काटकर दिया । इस पर इंद्र लज्जित हुए और कष्ट के लिये क्षमा मांगी। यह है मनुष्य का स्थान जो जान देकर भी शरणागत की रक्षा करता है । एक बार देवता असुरों से परास्त हो गये तो महात्मा दधीचि की शरण गये, अपना दुखड़ा रोया और उनसे उनकी हड्डियों को दान में प्राप्त करने की प्रार्थना की। देवों ने कहा कि आपकी हड्डियों से जो अस्त्र बनेगा उसी से उनका विनाश हो सकेगा, और कोई उपाय नहीं है । और उस महामानव ने खुशी-खुशी जीते जी अपनी हड्डियों का दान कर दिया । यह है-मनुष्यता जिसकी आन है–''यह जाता जीवन क्यों न जाय बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ।''

मनुष्यता स्वच्छ निर्मल हृदय चाहती है । जिनका चरित्र दुहरा है, वे सच्चे मनुष्य नहीं हैं । हजरत मोहम्मद साहब बड़े नेक और इंसाफ पसंद थे । उन्होंने सबको मुहब्बत और खुशियाँ बाँटी । एक यहूदी बूढ़ी विधवा जो प्रतिदिन उनपर कूड़ा फेंका करती थी, उसे बीमार होने पर स्वयं उन्होंने उसकी तीमारदारी की और सार्वजनिक रूप से पड़ोसियों के साथ अच्छे बर्ताव करने की बात कही । एक वेश्या को जब एक प्यासे कुत्ते को पानी पिलाते देखा तो आपने फरमाया कि यह औरत जन्नती है। युद्धबंदियों के लिये उन्होंने आदेश दे रखा था कि उनके साथ अच्छा व्यवहार करो, उन्हें जंजीरों में बाँधकर मत ले आओ , और जो तुम खाते हो वही उन्हें भी खिलाओ । एक आदर्श मनुष्य का यही व्यवहार होता है, वह सब में अपनी आत्मा का दर्शन करता है ।

महात्मा गाँधी ने सत्य और अहिंसा को अपने जीवन में उतारकर इसी मनुष्यता को उजागर किया। दासता और पराधीनता की बेड़ियों से जन-जन को मुक्त करने के लिये उन्होंने घोर अपमान सहे, लाठियाँ खायीं, जेल यातनाएँ सहीं और अन्त में गोलियाँ भी खायीं । जिसने गोली मारी उसके लिये भी उन्होंने ईश्वर से क्षमा मांगी कहा-प्रभु! इसे क्षमा कर देना क्योंकि यह नहीं जानता है कि यह क्या कर रहा है । उन की दृष्टि में मानव मात्र समान थे, चाहे वह ब्राह्मण हो या हरिजन, हिन्दू हो या मुसलमान । एक सच्चा मनुष्य बड़े-छोटे का भेद नहीं करता । एक बार महान विद्वान विद्यासागर के पास एक साधारण आदमी किसी का पत्र लेकर आया । गर्मी के दिन थे । वह थका मांदा गर्मी से परेशान सीढ़ियों पर बैठा सुस्ता रहा था । उन्होंने उसे परेशान देखा तो पंखा लेकर हवा करने लगे । इसी बीच उनके एक मित्र आ गये और इन्हें पंखा झलते देखकर हैरान रह गये । पीछे मित्र ने कहा-यह आप क्या कर रहे थे ? अरे वह एक मामूली आदमी था, पन्द्रह रुपये माहवारी पाने वाला और आप उसे

पंखा झल रहे थे ? आपने कहा- इससे क्या ? वह इंसान तो था ? मेरे पिताजी भी पन्द्रह रुपये माहवार ही पाते थे । मैं तो उसमें अपने पिताजी की साया देख रहा हूँ । यह है मनुष्यता जो अपना कद नहीं, फर्ज देखती है । हमारे प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद सरल स्वभाव के सीधे-सादे इंसान थे । वे सबसे विनम्रता और प्रेम का व्यवहार करते थे । नौकरों से भी प्रेम का व्यवहार करते व मीठा बोलते थे । एक दिन किसी बात पर उन्हें क्रोध आ गया और एक नौकर को डाँट-फटकार दिया । बाद में उन्हें पता चला कि नौकर का उसमें कोई दोष नहीं था । उन्हें उसे डाँटने का बड़ा पश्चाताप हुआ और उससे भूल के लिये क्षमा मांगी । यह है मनुष्यता जिसमें मिथ्या अहंकार नहीं होता, जिद्द नहीं होती, वह सरल और न्याय प्रिय होती है ।

परमसंत पूज्य पंडित मिहीलाल जी एक सीधे सरल इंसान थे । कोई बनावट नहीं थी, जो अन्दर था, वही बाहर था, एकदम पारदर्शी स्वभाव था । वह सबको सुखी और प्रसन्न देखना चाहते थे । उनमें ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं था । उन्होंने सबका दु:ख अपने ऊपर लेने और सबको सुख पहुँचाने का व्रत ले रखा था । आपकी साधुता देखकर एक उपेक्षित गरीब व्यक्ति ने होली के अवसर पर आपको अपने घर पधारने का आग्रह किया । उसको पूर्ण विश्वास था कि आप अवश्य आयेंगे और आपने उसकी इच्छा पूरी की, उसके घर पधारे और होली पर प्रेम और खुशियाँ बाँटी । दीन-दु:खियों पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने को आप सदा तत्पर रहते थे । आप मनुष्यता के साक्षात् स्वरूप थे ।

पूज्य गुरुदेव की जो साधना है, वह मनुष्य को मनुष्य बनाने की साधना है । उनका कहना है कि व्यवहार का निर्मल होना ही साधना की सफलता की कसौटी है । आपका कहना है कि पहले मनुष्य बनने की साधना करो फिर ईश्वर की साधना करना क्योंकि सच्चे दिलवाला ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है । आपका कहना है कि सूखा ज्ञान किसी काम का नहीं । जिस साधना से हृदय निर्मल न हो, जिससे हृदय में प्रेम उत्पन्न न हो, वह साधना साधना नहीं व्यर्थ का परिश्रम ही है। घर-गृहस्थी में रहकर आपने कठिन तपस्या की, अपने आपको तपाया और जगत के कल्याण के लिये प्रेम और सत्य का मार्ग दिखाया । आपका कहना है कि ईश्वर कहीं दूर नहीं, बल्कि सबके अन्दर है, सभी ईश्वर स्वरूप हैं। बस अपने आपको जानने की आवश्यकता है । मनुष्यत्व और ईश्वरत्व दोनों एक ही तत्व का नाम है । ईश्वरीय गुण आ जाने पर मनुष्य ईश्वर स्वरूप हो जाता है । एक बार पंडित जी महाराज आपके दर्शनों को आए । जब आपसे मिलकर वे वापस जाने लगे तो आप बहुत देर तक उन्हें निहारते रहे । पास बैठे हुए सज्जन से आपने पूछा- आप जानते हैं, वह कौन जा रहा है ? उन्होंने उत्तर दिया- हाँ महाराज वह तो पंडित जी जा रहे हैं । आपने कहा-नहीं, वह ईश्वर जा रहा है । यह थे उनके सुन्दर भाव जहाँ मनुष्य ही ईश्वर है, ईश्वर मनुष्य । ईश्वर निर्विकार है, बस

जिसका हृदय निर्विकार है, वह मनुष्य ईश्वर स्वरूप है ।

यह तो बात हुयी उन महापुरुषों की जिनका बड़ा नाम है, जो जन-जन में विख्यात हैं, जो इतिहास में अमर हैं । इनका सिलसिला अनन्त है जिनकी गणना करना असंभव है । मगर ऐसा नहीं है कि आज हमारे समाज में मनुष्यता का एकदम अभाव है । अपने समाज में अपने आस-पास भी ऐसी बहुत सी महान आत्माएँ हैं जिनके सुन्दर व्यवहार और आचरण के आगे मस्तक बरबस झुक जाता है । कई ऐसे लोग हैं जो पूजा-पाठ नहीं करते, मंदिर नहीं जाते, अपने मुख अपनी बड़ाई नहीं करते, मगर तन-मन, धन से सबकी सेवा में समर्पित रहते हैं, दीनों पर दया करते हैं, असहायों की सहायता करते हैं, अपने-पराये का भेद नहीं करते, शत्रु का भी अहित नहीं सोचते, सबसे मीठा बोलते हैं, सबसे प्रेम बाँटते हैं । ऐसे भी उदारमना लोग हैं जो ख्याल रखते हैं कि पड़ोसी किस हालत में है, उसके घर चूल्हा जला या नहीं, कई जरूरतमंदों को अन्न और कपड़े देते हैं, अपनी संपति जन कल्याण के लिये ट्रस्ट को दान कर देते हैं, लोग लंगर चलाते हैं आदि । उन्हें कोई जाने या न जाने, बस ऐसों से ही दुनिया कायम है। ऐसे लोग मनुष्यता के आधार हैं, श्रृंगार हैं । लोगों की दृष्टि में आज दुनिया चाहे जितनी भी बुरी है, मगर अच्छों की भी कमी नहीं है । यह मनुष्यता ही है जो आघातों को बर्दास्त करती हुयी सबके कल्याण का मार्ग खोलती है, सबके मलों को धोकर अन्तस को स्वच्छ करती है, सबके गुनाहों को माफ करती और स्वयं विषपान कर सबको जीवन प्रदान करती है । इसलिये गुरु महाराज का आदेश है कि तुम साधक नहीं, मनुष्य बनो, अपना भी भला करो, समाज का भी भला करो । लोक भी सुधारो और परलोक भी सँवारो। जय गुरुदेव ।

✦✦

सत्संगियों से.....

- यह मत समझ लेना कि हमें सिखाने की आज्ञा दे दी है तो हम इन सबसे योग्य समझे गये हैं । हो सकता है कि तुम्हारे ही हित को तुम्हें इसलिए यह काम दिया गया है कि तुमसे यह सब दशा में अच्छे हैं, उनकी संगति करो और अपने को योग्य बनाओ ।
- अभी अधिक व्याख्यान मत दो । दूसरे लोगों को मत समझाओ क्योंकि अभी गुरु आज्ञा नहीं है । यदि आज्ञा होगी तो आप की वाणी में गुरु की वाणी और भी सम्मिलित हो जायेगी जिससे सुनने वाले तुरन्त ही आप के अनुयायी हो जायेंगे । कच्चे नारियल देखने में बड़े ही अच्छे होते हैं किन्तु भीतर का पानी बदजायका होता है ।
- तुम त्याग और विरक्ति का चोला पहन कर लोगों को धोखे में न डालो । इस दशा में उनका कुछ न बिगड़ेगा लेकिन तुम्हारे गिर जाने में कोई सन्देह न रहेगा ।

परम भागवत पं. मिहीलाल जी

कर्त्तव्य-पालन के लिये ईश्वर का ध्यान जरूरी

— प्रोफेसर श्री महेन्द्रनाथ राय

आज के बुद्धिवादी समाज में प्रायः यह धारणा लोगों में व्याप्त देखी जाती है कि पूजा-पाठ और धर्म-अध्यात्म में संलग्नता बुढ़ौती के लिये सुरक्षित रखने की जरूरत है, जब तक तन-मन में शक्ति और सामर्थ्य है, बुद्धि और विवेक साथ दे रहे हैं, तब तक जागतिक सुरक्षा और समृद्धि के लिये जो-जो जरूरी है, उसे अर्जित कर लेना चाहिये। इस अर्जन में कोई कोताही नहीं बरतनी चाहिए। घर के मुखिया और दूसरे बड़े लोगों में तो यह धारणा व्याप्त दिखाई पड़ती है यदि उनकी संतानें सौभाग्य वश युवावस्था के दौरान ही किसी की प्रेरणा से किंचित् इस धर्म-मार्ग पर अग्रसर होती दिखाई पड़ती हैं तो पूरे परिवार में चिंता व्याप जाती है, आत्मीय जनों के चेहरों पर परेशानी छा जाती है। शायद कुछ ही परिवार के मुखिया होंगे जिन्हें इस बात की हार्दिक प्रसन्नता होगी कि उनके प्रतिपाल्य सही दिशा की ओर अग्रसर हो रहे हैं। नई सभ्यता और संस्कृति का यह दृष्टिकोण सर्वथा एक पक्षीय है। संतों का मानना है कि इस जगत में सही व्यवहार-व्रर्ताव के लिये व्यक्ति में आस्तिकता होनी चाहिये। जो बहुत बड़ा सुरक्षा-कवच है। परमभागवत पंडित जी महाराज का कहना था कि कर्त्तव्य-पालन ठीक से करने के लिये ईश्वर का ध्यान जरूरी है। ज्ञान पुस्तकों से, लोगों के उपदेशों से भी मिलता है पर वह शांति प्रदान करने में सक्षम नहीं होता। जो ज्ञान सद्‌गुरु के प्रकाश में भीतर से उद्‌भूत होता है, वह शांतिदायक होता है। इस प्रकाश में यदि मनुष्य अपना कर्त्तव्य-पालन करता चला जाये तो उसे क्रमशः मनुष्यत्व ईश्वरत्व एवं अमरत्व मिलता जायेगा। रामाश्रम सत्संग के परम पूज्य श्री दादा गुरु, परम पूज्य श्री गुरु महाराज, परमपूज्य श्री बड़े भैय्या से लेकर सभी ने यह महसूस किया है कि यह विद्या बयोवृद्ध और अंतिम बंसत देखने की लालसा रखने वालों से अधिक हितकारी उस नई पीढ़ी के लिये है जिसके कंधों पर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व- मानवता का योग-क्षेम अवलंबित है। जीवन- जगत के जिस क्षेत्र में आपको लोकमांगलिक कार्य करना है, ज़ो शोध और अन्वेषण आपके सपनों में है, वह सब सर्वोत्तम ढंग से पूरा होगा, यदि आप इष्ट और आराध्य के प्रकाश में जाग्रत ढंग से क्रियारत हों, कर्मशील हों।

आज दुनियावी ढंग के देहवादी युग में सभी जागतिक समृद्धियों के साथ जी रहे लोगों के जीवन में, उनके पारिवारिक संबंधों और वर्गीय

समाज में सभी कुछ है पर आंतरिक शांति, सुख और संतोष नहीं है। ऐसे लोग अपने दुःख से जितने दुःखी नहीं हैं उससे अधिक दूसरों के और वह भी अपने पड़ोसी पट्टीदार के सुख संतोष और बढ़ोत्तरी से यश और कीर्ति से दुःखी हैं । अब इस मानसिक रोग का कौन उपचार है जिसका बयान भद्र समाज में किया भी नहीं जा सकता, केवल भीतर-भीतर परिताप से जला-भुना ही जा सकता है । ऐसे ही अनेक मानसिक रोग हैं जिसका विस्तार से आख्यान गोस्वामी जी के 'मानस' में है और उनसे उपराम होने की विधि का भी निर्देश है, पर हम रामकृपा और सद्गुरु के वचनों पर विश्वास करने की पात्रता आज तक अर्जित नहीं कर सके, इससे बड़ा दुर्भाग्य दूसरा क्या होगा ?

जिस दिन से गुरु के सम्मुख मानसिक रूप से सुनिश्चित समय पर बैठने की दृढ़ता किसी में आई और इसमें निरंतरता बनाये रखने के संकल्प की भी वह रक्षा कर सका, उससे भाग्यशाली दूसरा कौन होगा? दृढ़ निष्ठा और मनोयोग से हमने यदि जीवन में सब कुछ सुन्दर ढंग से अर्जित किया तो परमात्मा से मिलाने वाले गुरु के वचनों पर अटल विश्वास रखते हुए हम इस रुहानी दौलत से अभी तक क्यों वंचित रहे ? वस्तुतः हमने लोक को, दुनियादारी को, स्वयं की मान और प्रतिष्ठा को ज्यादा तवज्जह दी और जो इस सबका हेतु है, उसके महत्व को जान कर भी नहीं जाना, नहीं माना । जगत से डरे और उसे वरीयता दी लेकिन जिससे वास्तव में डरते तो दूसरों से निर्भय रहते, उसकी अवज्ञा की यही हमारी आज तक की सबसे बड़ी त्रुटि रही, सबसे बड़ा अपराध रहा । अतः हम सबका यह सबसे बड़ा कर्त्तव्य है कि नित्य-प्रति प्रार्थना और प्रपन्ति की अवधि को आत्मानुशासन पूर्वक अपनी जीवन-चर्चा का अंश मानते हुए, निश्चित समय पर आराध्य के सम्मुख अपनी उपस्थिति बिना नागा बनाते हुए पूर्णभाव पूर्वक गुरु द्वारा निर्दिष्ट उपासना-विधि का अनुपालन करें । ध्यान में थोड़ी देर बैठने मात्र से जब अपने कर्त्तव्य-पालन में इतनी सुगमता और सरलता आ जाती है, लोगों से व्यवहार-वर्ताव में आशातीत शालीनता आ जाती है, कठिन से कठिन परिस्थिति में विकल्प की किरण सूझ जाती है तो जो साधक इसे जीवन में शीर्ष स्थानीय महत्व देते हैं, वे कितने मधुर-मनोहर स्वभाव और आत्मविश्वास के धनी बन जाते हैं, उनके व्यवहार में कितनी संवेदनशीलता और आत्मीयता भर जाती है- इसे अपने 'रामाश्रम सत्संग' के अनेक महापुरुषों के व्यक्तित्व में सहज ही लक्षित किया जा सकता है । यह कहने की नहीं अनुभव करने की वस्तुस्थिति है । इसीलिये परमपूज्य पण्डित जी महाराज अपने प्रवचनों, आलेखों और महापुरुषों के उदाहरणों में हमेशा इस बात पर बल देते रहे कि जो कुछ सोचो विचारो या जो कुछ करो उसके पूर्व सर्वप्रथम अपने गुरु-भगवान का थोड़ा ध्यान कर लो, उनके समक्ष मानसिक रूप से उपस्थित हो जाओ-तब जो कुछ करणीय होगा और सुन्दर

ढंग से होगा । लोगों के प्रति तुम्हारी संवेदनशीलता और आत्मीयता का दायरा बढ़ता जायेगा । करके तो देखो ।

आस्था-विश्वास के अभाव के इस युग में आस्तिकता, परमात्म सत्ता में अटूट विश्वास मनुष्य मात्र के लिये बहुत बड़ा अवलंब है तभी तो गोस्वामी जी प्रभु से 'विनयपत्रिका' में और आस विश्वास भरोसे हरो जीव जड़ताई' का आश्वासन चाहते हैं । जो गुरु में निष्ठावान हैं और उनके वचनों पर विश्वास कर तदनुकूल जीवन-यापन करते हैं, उनके लिये यह संसार परमसुन्दर और रमणीय बन जाता है किंतु जो निगुरे हैं उनके लिये यह भवसागर ही है क्योंकि उनकी आस्था का कोई स्रोत नहीं है । इसलिये हमें लग-लपट के सद्‌गुरु द्वारा निर्दिष्ट साधना के सहारे अपनी आत्मा को बलवान बनाना है । ज्ञान शक्ति, विवेक शक्ति और स्मरण शक्ति को तीव्र करना है ताकि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय को समझ सके पूरी तरह से अंतर्मुखी हो सके और आंतरिक मल-विक्षेप को दूर करते हुए, अशान्ति को मिटाते हुए परमविश्राम को पा सकें । गहरे ध्यान द्वारा ही गौतम बुद्ध ने अपने चित्त को एकाग्र करके सम्पूर्ण विश्व को अपने भीतर देख पाने में सफलता पाई । गुरु से निर्देशित पूजा और ध्यान से सही ढंग से देखने और अनुभव करने की योग्यता आती है । वस्तुतः यह कहने की नहीं अनुभव करने की बात है। ध्यान में उतरने की अर्हता गुरुकृपा से आती है, अपने कर्त्तत्वप्रधान पुरुषार्थ से नहीं । गुरु से कैसे जुड़ा जाता है- इसके अद्वितीय उदाहरण परमभागवत पंडितजी महाराज थे जिन्होंने अपने उद्‌वोधनों में बोलने के नाम पर गुरु-कृपा की महिमा बखानी, साधक शिष्यों की मातृवत रखवाली की । इसलिये एक ही मुख्यमंत्र है कि जो कुछ करें उसके पूर्व अपने आराध्य का स्मरण करलें और उनके प्रकाश में हर-समय रहने का उद्योग करें । बड़ों का यही निर्देश है ।

✦✦

अमृत-वचन

ज्ञानी बनने के लिए और प्रभु की रहस्यमयी लीला का यथार्थ भेद जानने के लिए मनुष्य को तीन काम लाजिमी हैं- (1) अभ्यारा (2) गुरु का सत्संग और (3) ऋषियों और सन्तों के बनाये हुए ग्रन्थों का पाठ । मगर यह तीनों काम हृदय की लगन से होने चाहिए । किसी काम में सुरति या तवज्जह जब तक पूरी तरह से नहीं लगती तब तक सफलता नहीं मिलती । गुरु के बताए हुए अभ्यास को नित्य प्रति लगन के साथ करो, गुरु या शास्त्रों के वाक्य को अपने दिल में जगह दो । उनके अनुसार जीवन बनाने की कोशिश करो । इन्हीं से विवेक खुलता है, इन्हीं से ज्ञान प्राप्त होता है और उन्हीं से इस दुःख सागर से छुटकारा मिलता है ।

—पूज्य गुरुदेव

स्थितप्रज्ञता और उसके साधन

— श्री गोपाल कृष्ण रंजन

हम सब जानते हैं कि कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि पर किस तरह अर्जुन को कर्त्तव्य-मोह हो गया था। अर्जुन की शंकाओं का निराकरण करते हुए भगवान श्रीकृष्ण पहले उसे आत्मा का ज्ञान देते हैं उसके बाद योगबुद्धि का मर्म समझाते हैं। उन्होंने निर्गुण का साक्षात्कार सांख्य बुद्धि के द्वारा और सगुण की पहचान योग बुद्धि द्वारा कराने का प्रयास किया। उन्होंने शास्त्र भी समझाया और कला भी बता दी किन्तु हम जानते हैं कि इतने से भी पूरी तस्वीर स्पष्ट नहीं होती है। निर्गुण निराकार सगुण में रुपान्तरित होकर भी ठीक-ठीक पहचाना नहीं जाता। इसके लिए आवश्यक है कि सगुण साकार भी हो। अर्थात् जिसमें इन गुणों का आविर्भाव हुआ है, उसका दर्शन हो। इसलिए, अर्जुन भगवान से उस पुरुष के लक्षणों को बताने को कहता है जिनकी बुद्धि सांख्य दर्शन से ओतप्रोत हो और जिनके आचरण और व्यवहार में कर्मफलत्याग परिलक्षित होती हो, अर्थात् जो आदर्श पुरुष हो।

ऐसे पुरुष को गीता स्थितप्रज्ञ की उपाधि देती है। गीता के अनुसार स्थितप्रज्ञ एक आदर्श पुरुषविशेष है। स्थितप्रज्ञ अर्थात् जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गई हो। बिना स्थिर प्रज्ञा के कोई आदर्श पुरुष नहीं हो सकता। योग बुद्धि की चार मंजिलें बताई गई हैं-1) साधन-निश्चय 2) फल-निरपेक्ष एकाग्रता 3) समता या समाधि और 4) स्थिर प्रज्ञता. योग के लिए महर्षि पतंजलि ने भी यही कहा है- **श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्** अर्थात् योग के लिए आरम्भ में श्रद्धा, उससे वीर्य अथवा उत्साह, फिर आत्म-स्मरण, फिर ध्यान समाधि, उससे प्रज्ञा और तत्पश्चात स्थिर प्रज्ञा। समाधि योग नहीं वरन समाधि स्थिर प्रज्ञा की प्राप्ति का साधन है। प्रज्ञा का तात्पर्य ऐसी स्थिति से है जिसमें तत्वों के स्वरूप का सही-सही ज्ञान सहजता से उतरे और जो चिरस्थायी, सदा के लिए हो। प्रज्ञा और सामान्य बुद्धि में अन्तर है। बुद्धि समय और मन की स्थितियों के अनुसार परिवर्तनशील है, बुद्धि पर मन के संकल्पों-विकल्पों का रंग चढ़ता उतरता रहता है और वह शुद्ध ज्ञान नहीं बता सकती। इसके विपरीत प्रज्ञा पर मानसिक वृत्तियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह तटस्थ रहकर शुद्ध ज्ञान देती है। दूसरे शब्दों में, शुद्ध बुद्धि ही प्रज्ञा है, अध्यात्म ज्ञान में बुद्धि की मात्रा का महत्व नहीं, बुद्धि की शुद्धता का है। भगवान राम भी यही कहते हैं-निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा। यह प्रज्ञा स्थित अर्थात् निश्चित और सरल होनी चाहिए।

भगवान कृष्ण स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हुए कहते हैं-

प्रजहाति यदाकामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते

(मन की समस्त कामनाओं का त्याग करके जो आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उसे स्थितप्रज्ञ कहते हैं)

मन कामनाओं से बना है। कामनाओं की निरंतर उठती तरंगें ही मन को चंचल बनाती हैं, सारी कठिनाइयों की जड़ में मन और बुद्धि का द्वंद ही है। बुद्धि का काम है निर्णय लेना परन्तु जब मन बुद्धि पर हावी हो जाए तो वह अपने संकल्पों और विकल्पों के रंग से बुद्धि की निर्णायक क्षमता को प्रभावित करने लगता है। परिणामतः हमारे निर्णय और हमारे कार्य गलत होने लगते हैं। इसलिए जरूरी है कि मन बुद्धि के मातहत होकर काम करे. बुद्धि निर्णय करे और मन उस निर्णय का अमल करे। संतोष और आनंद का निर्मल और अबाध झरना हमारे अंदर ही है, इसके लिए कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है। हमारा वास्तविक स्वरूप सत-चित आनन्द है, अज्ञानता जनित अपूर्णता का एहसास ही हमें आनन्द की तलाश में दूर भटकने पर विवश करता है। परन्तु जब हम जान जाते हैं कि हमारा स्वरूप पूर्णता का है, फिर हमें आनन्द का शाश्वत झरना अपने अंदर ही दिखने लगता है।

भगवान आगे इस स्थितप्रज्ञता की स्थिति को प्राप्त करने के साधनों की व्याख्या करते हुए मुख्यतः तीन साधनों का उल्लेख करते हैं-

(1) दुःख सुख में समता भाव रखें

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते

(जिसका मन दुःख से उद्विग्न न हो और जो सुख में हर्षित न हो और जो आसक्ति, भय और क्रोध से मुक्त हो, वह स्थिर बुद्धि वाला मुनि कहलाता है)

दुःखों को धैर्यपूर्वक सहना चाहिए। दुःखों से हमें त्रस्त और पस्त नहीं होना चाहिए. इसी तरह हमें सुख में भी सावधान होकर अपने मन को उसमें लिप्त नहीं होने देना चाहिए। दुःख हो या सुख दोनों कामना के ही दो भिन्न रूप हैं- एक वांछनीय है तो दूसरा अवांछनीय, इसलिए दोनों स्थितियों में अपने मन की वृत्तियों को दौड़ने से रोकना चाहिए।

कामना के तीन परिणाम होते हैं- तृष्णा, क्रोध और भय। अनुकूल कामना अर्थात् सुख से तृष्णा अथवा राग जन्म लेती है। प्रतिकूल कामना अर्थात् दुःख से क्रोध की उत्पत्ति होती है। जो वस्तु हमें अत्यधिक प्रिय होती है, उसके खोने का एहसास हमारे भय को जन्म देती है। तृष्णा, क्रोध और भय की वृत्तियाँ जबतक नष्ट न हों, प्रज्ञा स्थिर नहीं होती।

भगवान आगे कहते हैं-

(2) वृत्तियों के साथ न बहें

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

(जो इस संसार में सर्वत्र न तो शुभ की प्राप्ति से हर्षित होता है और न ही अशुभ की प्राप्ति से

उससे घृणा करता है उसकी प्रज्ञा स्थिर और अचल रहती है)।

वे कहते हैं, वृत्तियों के साथ न बहो. मन को कहीं भी उलझने मत दो, उसे कहीं लिप्त न होने दो. शुभ हो या अशुभ बुद्धि समता में रहे। न शुभ (वांछित) के लिए अभिनन्दन और हर्षातिरेक हो और न ही अशुभ (अवांछित) के लिए संताप और वेदना हो। चाणक्य कहते हैं- बुद्धिस्तु मा गान मम- चाहे मेरा सबकुछ चला जाए पर मेरी बुद्धि सलामत रहे।

(3) इन्द्रियों को समेट लें

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः

इन्द्रीयाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता

(खतरा भांपते ही अपने सारे अंगों को समेट लेने वाले कछुए की भांति अपनी इन्द्रियों को विषयों से समेट लेने वाले की प्रज्ञा स्थिर और अचल रहती है)।

जहाँ विषयों से खतरा जान पड़े वहाँ अपनी इन्द्रियों को समेट लें। जहाँ विषयों को खतरा न हो और इन्द्रियों का उपयोग पारमार्थिक उद्देश्यों के लिए हो, वे खुली रहें, स्थितप्रज्ञता का एक लक्षण जितेन्द्रियता भी है।

संक्षेप में, स्थितप्रज्ञता ऐसी स्थिति का नाम है जिसमें बुद्धि शुद्ध होकर प्रज्ञा बन जाती है और वह स्थिरता, निश्चलता, सरलता और सहजता जैसे गुण धारण करती है। जब यह स्थिति आती है तो मन अपनी सारी कामनाओं का त्याग कर आत्मा में स्थिर होकर सुख और शान्ति पाता है। इसके लिए भगवान ने उत्तरोत्तर सरल साधनाएँ बताईं- (1) कामनाओं का त्याग करो (2) कामनाएँ न छूट सकें तो कामनाओं के परिणामों पर अंकुश लगाएँ (3) परिणाम यदि फिर भी शेष रहें तो उनसे बुद्धि को अलिप्त रखें और (4) कछुए की भांति विषयों से इंद्रियों को समेटें.

भगवान कहते हैं-

विहाय कामान यः सर्वान पुमांश्चरति निस्पृहः

निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति

(सभी कामनाओं को त्याग कर जो पुरुष निःस्पृह होकर विचरता है, जिसकी अहंता और ममता दोनों नष्ट हो गई हैं, वह शान्ति को प्राप्त होता है।)

परम पूज्य गुरु महाराजजी से प्रार्थना है कि वे हम सब पर ऐसी दया करें जिससे हमारी बुद्धि भी शुद्ध हो जाए और हम भी गीता की बताई स्थित प्रज्ञता को प्राप्त कर सकें। ओऽम् शम्।।

✦✦

संत वचन

मानव मात्र के लिए निश्चल प्रेम भाव रखते हुए और ईर्ष्या द्वेष आदि भावनाओं की कलुषित छायाओं से दूर रहकर निष्काम भाव से श्रमशील रहने की भावना ही जीवन की सर्वोच्च साधना है। इस तरह किया गया कर्म न केवल मन को मलिनताओं से दूर करता है, बल्कि जन्म जन्मान्तरों से चित्त पर छाए कुसंस्कारों को भी विगलित करता है। भव बन्धनों से मुक्ति ही मनुष्य की सच्ची प्रगति है।

संत-चरित :-

भक्तिमति श्री ताजबेगम

— श्री विश्वनाथ शर्मा

भारत में लगभग चार सौ वर्ष पूर्व भगवान श्रीकृष्ण की एक परम भक्ता विदुषी कवियित्री मुसलमान महिला श्री ताजबेगम हुई हैं । एक मान्यता के अनुसार श्री ताज का जन्म राजस्थान के शेखावटी अंचल में एक कायमखानी मुसलमान नवाब श्री फदनखाँ के यहाँ हुआ था । कायमखानी मूलरूप से चौहान राजपूत थे जिनके यहाँ हिंदू सामाजिक परम्पराओं का पालन होता रहा है । नवाब फदनखाँ की समीपवर्ती कृष्णभक्त राजा रायसल से पारिवारिक मित्रता थी इसलिए बालिका ताज का परिचय भगवानकृष्ण के प्रेममय पावन चरित्र की गाथाओं से हुआ । कालांतर श्री ताज की सुंदरता और गुणों की प्रसिद्धि के फलस्वरूप मुगल बादशाह अकबर से विवाह हो गया। अकबर के शाही महल में रहते हुए श्री ताज (अब बेगम हो गईं) की गहन मित्रता अकबर के एक नवरत्न बीरबल की पुत्री शोभावती से हो गई। शोभावती भगवान कृष्ण की भक्त थी और उससे श्रीताज की कृष्णभक्ति के प्रति रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। संयोगवश श्रीताज उन दिनों महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोसाईं विठ्ठलनाथ के संपर्क में आई। श्री ताज ने समय पाकर श्री विठ्ठलनाथ के सत्संग में भाग लिया। बादशाह अकबर श्री विठ्ठलनाथ का भरपूर सम्मान करता था इसलिए उसने श्रीताजबेगम को सत्संग में जाने से नहीं रोका । सत्संग के फलस्वरूप श्रीताज में प्रबल कृष्ण भक्ति की हिलोर उठने लगी । श्रीताज के मन में प्रबल इच्छा जाग्रत हुई कि उसे वृंदावन में रहकर कृष्णभक्ति का रसपान करना चाहिए । किन्तु उसके मुसलमान होने और मुगलबादशाह की बेगम (रानी) होने के कारण इस इच्छा का पूरा होना कठिन लग रहा था । श्रीताज ने अपनी वेदनापूर्ण समस्या श्री विठ्ठलनाथ को बतलायी। श्री विठ्ठलनाथ ने समस्या के समाधान हेतु श्रीताज को एक ताबीज पहनने को दिया । अन्य बेगमों को जब श्रीताज के द्वारा एक हिंदू संत के द्वारा दिये गए ताबीज को पहनने की जानकारी मिली तो उन्होंने बादशाह अकबर को शिकायत पहुंचाई। अकबर ने स्वयं जानकारी ली और श्रीताज से उस ताबीज का रहस्य पूछा । श्रीताज ने उसे एक संत का आशीर्वाद मानते हुए ग्रहण करना बतलाया जिससे सभी का कल्याण हो। अकबर के आदेश पर उस ताबीज को खोलकर देखा गया तो उसमें लिखा पाया—

कामन तामन टोटका, यह सब डारो धोय ।
पिया कहे सो कीजिए, आपहि ते बस होय ।।

भावार्थ है कि जादू-टोना और टोटका इत्यादि का त्याग करना चाहिए और प्रिय (पति अथवा ईश्वर) जो कहे उसका अनुसरण करने से सफलता मिलती है । अकबर समझदार था और उसे संतुष्टि हुई । अपनी पत्नी की ईश्वरी मार्ग में उन्नति में बाधक नहीं बनने के निश्चय को करके बादशाह

श्री अकबर ने श्रीताज को वृंदावन में जाने और वहाँ उपासना करने की अनुमति दे दी । अकबर जी की राजधानी आगरा से चलकर समय-समय पर श्री ताज मथुरा-वृंदावन में जाने लगीं। वृंदावन में श्रीताज को अनेक दिव्य अनुभूतियाँ हुईं । कृष्णभक्ति में वे इतना अधिक रम गईं कि स्थानीय लोग यह पहचान नहीं कर पाते थे कि वे मुसलमान हैं । एक अवसर पर अपने प्रियतम कृष्ण के प्रति उन्होंने उद्‌गार प्रकट किये थे-

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम ।
तेरे हाथ हूँ, बिकानी, बदनामी भी सहूंगी मैं।।
नंद के कुमार, कुर्बान, तेरी सूरत पै ।
हौं तो मुगलाली, पैहिंदुआनी बन रहूँगी मैं ।।

अकबर के महल में रहने वाली अन्य बेगमों को श्रीताज का उच्च कृष्ण प्रेम नहीं सुहाया और महल का वातावरण अशांत हो चला । तब समय की प्रतिकूलता जानकर श्रीताज पति देव अकबर की अनुमति पाकर महल छोड़कर वृंदावन स्थायी रूप से रहने को चली गईं। वृंदावन पहुंचकर श्रीताज ने संकल्प किया—

अल्ला बिसमिल्ला रहीमन और रहीम छोड़।
पीर और शहीदों की चर्चा न चलाऊँगी ।।
बांदी बनूंगी राधा महारानीजी की ।
तुर्किनी बहाय नाम गोपिका कहाऊँगी ।।

वृंदावन में निवास करते हुए उन्होंने अपना परिचय किसी को नहीं दिया और नित्य नियमपूर्वक श्री गोविंद देव जी के मंदिर में दर्शनार्थ जाती थीं । मंदिर की मर्यादा को ध्यान में रखकर वे मंदिर के अंदर प्रवेश नहीं करती थीं अपितु बाहर चौखट पर प्रणाम करके चरणरज माथे से लगाकर लौट जाती थीं । इस नित्य नियम से श्रीताज का कृष्णप्रेम अनुराग में परिवर्तित हो गया । उस अनुराग की स्थिति में एक दिन उलाहना देते हुए मंदिर से लौट आईं कि-हे गोविंद! मैं एक मुसलमानी हूँ इसलिए मेरी लाचारी है कि मैं मंदिर के अंदर आकर दर्शन नहीं कर पाती हूँ । किन्तु तुम तो हिंदू-मुसलमान की सीमा से परे हो इसलिए बाहर आकर दर्शन दे सकते हो । अब जब तक तुम स्वयं आकर दर्शन नहीं दोगे तो मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी। श्रीताज अपने कमरे में लौटकर आ गईं और अन्न-जल त्याग दिया । तीन दिनों के पश्चात् मध्यरात्रि में श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर दिव्य दर्शन दिये और श्रीताज के सम्मुख मंदिर का प्रसादथाल तथा जल की झारी रखकर खाने-पीने का आग्रह किया । श्रीताज ने स्वयं श्रीकृष्ण के हाथों से प्रसाद ग्रहण किया और तृप्त हो गईं । दूसरे दिन जब श्रीताज मंदिर में बर्तनों को लौटाने के लिए गईं तो शोर मच गया कि ताले में बंद दरवाजों के उपरांत भी थाल झारी का भक्त के यहाँ पहुंच जाना ईश्वरीय कृपा का प्रत्यक्ष प्रमाण है । वहाँ उपस्थित सभी लोग श्रीताज के दर्शन करके स्वयं को कृतार्थ समझ रहे थे । श्रीताज ने उस दिन मंदिर के अंदर प्रवेश किया और उन्हें किसी ने नहीं रोका । श्रीताज की प्रसिद्धि चारों ओर फैलगई । इस प्रसिद्धि से अपने साधनामय जीवन में व्यवधान मानते हुए श्री ताज ने वृंदावन छोड़ दिया और समीप महावन चली गईं । अंत तक श्री ताज महावन रहीं और वहीं पर उनकी समाधि बनी हुई है । महाप्रभु वल्लभाचार्य की भक्ति और कीर्तन परम्परा में श्रीताज बेगम की भक्ति रचना विशेष रूप से गाई जाती है ।

उनका सन्देश- प्रेम, प्रेम, प्रभु से निष्काम प्रेम

✦✦

गुरु कृपा कैसे प्राप्त हो

– श्री डी.के. सिन्हा

हम जानते हैं कि हमारे रामाश्रम सत्संग की साधना कृपा साध्य है । यह नितान्त आवश्यक है कि साधना में प्रगति करने के लिए हमें गुरु कृपा प्राप्त हो । अब यह प्रश्न उठता है कि हम किस प्रकार गुरु कृपा प्राप्त कर सकते हैं ? गुरु महाराज ने अपने साहित्य में अध्यात्म के सभी रहस्यों को खोल कर प्रकाशित कर दिया है । हम सभी ने सत्संग के महापुरुषों का सानिध्य पाया है लेकिन जब हम गहराई से अपनी ओर देखते हैं तो लगता है कि हम अपने नीचे के स्थान से जरा भी टस से मस नहीं हुए हैं । इसका कारण है कि इन महापुरुषों के सामने भी हमने अपने मन को उनकी तरफ नहीं रखा । इसे गुरु महाराज ने सबसे बड़ी वेअदबी कहा है । ऐसा नहीं करने के कारण ही हमें महापुरुषों के सानिध्य में वह लाभ नहीं होता, वह वस्तु प्राप्त नहीं होती जो वे हमें देना चाहते हैं। गुरु महाराज ने स्वयं कहा है कि विश्व के किसी कोने में बैठा सत्संगी उनसे सब कुछ प्राप्त कर सकता है यदि वह अपने मन को मेरी तरफ लगाये रखे । गुरु महाराज ने आज की हमारी जरूरतों को देखते हुए गुरु चिन्तन का प्रावधान किया । जब हम परिवार के सदस्यों से अलग होते हैं तो उनके स्वरूप को याद करते रहते हैं । इसी तरह गुरु महाराज के स्थूल स्वरूप को हर समय हमें पलकों में रखने की आवश्यकता है । गुरु चिन्तन का प्रारम्भ स्थूल स्वरूप से ही होता है । हम अपने सभी सांसारिक कामों को करते हुए भी मन में उनकी याद हमेशा बनाये रख सकते हैं । यह सही है कि प्रारम्भ में उनके स्थूल स्वरूप को भी आँखों के सामने लाने में थोड़ी दिक्कत होती है । वे तो पूरे ब्रह्माण्ड के मालिक हैं लेकिन प्रयास करते रहने से, लगे रहने से इसमें सफलता अवश्य मिलती है । यह भी होता है जब हम प्रयास करते हैं उस समय उनका स्वरूप नहीं आता बाद में अनायास आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है । यह देखा हुआ है कि सांसारिक कामों के करने के समय भी उनका स्वरूप आँखों के सामने आ जाता है । गुरु महाराज की बतायी हुई क्रिया पूर्ण है । गुरु के ध्यान व चिन्तन से ही अंतिम मंजिल तक पहुँचा जा सकता है । कमी सिर्फ अपने में है- लगन और तड़प की कमी । क्या हमने कभी उनकी याद में आँसू बहाये हैं ? उनकी तड़प ने क्या कभी हमारे मन को उद्वेलित किया है ? इस वर्तमान समय में माया का दुष्कर प्रभाव हम हर तरफ देखते हैं। इससे बचने का एकमात्र रास्ता उनका चिन्तन है, उनकी कृपा है । हमने अपना बहुत समय बर्बाद किया है हमारी आन्तरिक स्थिति में जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ है । अगर हमने अध्यात्म मार्ग में चलने का दृढ़ संकल्प किया है तो हम इसी क्षण से अपने जीवन में सुधार ला सकते हैं । इस स्थिति में हम देखेंगे कि गुरु पर श्रद्धा व विश्वास से जैसे-जैसे हमारी लगन बढ़ेगी संसार से आन्तरिक वैराग्य अपने आप होने लगेगा । गुरु से प्रेम करने पर सभी

सांसारिक आकर्षण तुच्छ नजर आयेंगे। उनकी याद करते रहने से अपनी छोटी से छोटी गलती भी तुरन्त नजर आने लगेगी, उसे दूर करने का प्रयत्न हम करेंगे । अध्यात्म का सफर लम्बा है, अनेकों मंजिलें पार करनी पड़ती हैं । यह हम तभी कर सकते हैं जब हम गुरु महाराज को हमेशा साथ रखें । गुरु महाराज के स्थूल स्वरूप में अपने स्थूल को लय करना पहली सीढ़ी है । इसके बाद सूक्ष्म और कारण का लय होना है इसके आगे भी बहुत कुछ है । लेकिन यह पहली सीढ़ी चढ़ने में हम सफल हो गये तो उन्होंने स्वयं कहा है कि आगे के रास्ते में उनको कठिनाई नहीं होगी। ऐसी स्थिति आयेगी कि हमारे संसार के सारे कार्य भी ठीक होंगे और उनकी याद भी बनी रहेगी । यह हमारे ऊपर है कि हम आत्म निरीक्षण करते रहें, उनको याद करते रहें, उनसे बिनती करते रहें और उनकी कृपा के सहारे अपने इस जीवन को सफल करें । गुरु महाराज हम सब पर कृपा करें ।

✦✦

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्र का भण्डारा/सत्संग कार्यक्रम

गोरखपुर :

दिनांक : 14 (सुबह से), 15 एवं 16 अप्रैल 2015
सत्संग स्थल : शगुन मैरिज हाउस, पादरी बाजार रोड
सम्पर्क सूत्र : श्री उमाशंकर त्रिपाठी, मो. 09454351508

दिलदार नगर (उ.प्र.) :

दिनांक : 21 (सायं से), 22 एवं 23 अप्रैल 2015
सत्संग स्थल : जूनियर हाईस्कूल दिलदार नगर, थाना के पास
सम्पर्क सूत्र : श्री राम इकबाल पाण्डेय मो. 9532126341

करगहर (बिहार) :

दिनांक : 23 (सायं से), 24 एवं 25 अप्रैल 2015
सत्संग स्थल : हाई स्कूल, करगहर
सम्पर्क सूत्र : श्री जग नारायण तिवारी मो. 08084280696
श्री विन्ध्याचल चौरसिया मो. 09973037787

साहित्य परिचय

❖❖ अलौकिक भक्ति योग ❖❖

वास्तविक आनन्दित जीवन बनाने के लिए बहुत थोड़ी सी पुस्तकें आध्यात्मिक जगत में उपलब्ध हैं । बिना ऐसी शिक्षक पुस्तकों के अपना जीवन कभी भी सार्थक और कृत-कृत्य नहीं हो सकता, ऐसी पुस्तकों से ही समाज की महती सेवा हो सकती है ।

हिन्दी साहित्य में यह एक नवीन ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ निर्गुणी सन्तों की वाणी होते हुए भी भक्ति तथा प्रेमरस से परिपूर्ण है क्योंकि सन्तों की वाणी ही सरस और सत्य होती है ।

वास्तव में जिज्ञाषु भक्तों के लिए यह पुस्तक लाभकारी है । भक्ति करने में किन-किन बातों की आवश्यकता होती है, क्या-क्या वस्तुयें त्यागनी पड़ती हैं इत्यादि सारे ही साधन विस्तार से बतलाये गये हैं। आशा है कि भक्ति मार्ग के साधक इस पुस्तक से अपने और अपने साथियों के लिए शिक्षा ग्रहण कर लाभ उठायेंगे ।

❖❖ उपासना ❖❖

महापुरुषों के शब्द कभी लुप्त नहीं होते और न उनकी शक्ति विलुप्त होती है क्योंकि शब्द अनादि है, शरीर अनादि नहीं । अतः वह शब्द आज भी सुने जा सकते हैं जो किसी महापुरुष ने कभी कहे थे । उसकी जो क्रिया है, वही उपासना कहलाती है । उपासना एक रहस्यमय योग है । यह द्वैत से प्रारम्भ होकर अद्वैत में पूर्ण होती है । अपने स्वप्न की यह एक नवीन जाग्रति है । उपासना सबके लिए आवश्यक है क्योंकि त्रयतापों का नाश इसके बिना नहीं होता । मनुष्य चाहे कितना ही ज्ञान प्राप्त कर ले, उपासना में पहुँचे बिना शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता । यह पुस्तक उपासना की दिशा में नई दिशा एक नया सन्देश, नई साधना और नवीन चेतना लेकर अवतरित हुई है । इस पुस्तक में इन सभी पर प्रकाश डाला गया है। पढ़ें और जीवन में उतारें।

❖❖ कल्याण मार्ग ❖❖

परमपूज्य बड़े भैया के प्रवचनों, विचारों एवं लेखों का संग्रह इस कल्याण मार्ग पुस्तक में प्रस्तुत है। वह अध्यात्म के पूर्ण ज्ञाता होने के अतिरिक्त बहुत बड़े विचारक और सुधारक थे। अध्यात्म की राह पर चलने वाले साधक को क्या-क्या करना चाहिए इसको बड़े ही सहज सरल भाषा में समझाने का प्रयास किया गया है।

उनके अन्तिम प्रवचन एक प्रकार से उनकी वसीयत हैं जो साधकों के लिए बहुमूल्य थाती के समान हैं। अपने जीवन में उतारने से साधकों को बहुत लाभ होगा। आशा है यह संग्रह साधकों के लिए वास्तव में उनका कल्याण मार्ग प्रशस्त करेगा।

D E C L A R A T I O N

SADHAN

The following statement about ownership and other Particulars relating to the SADHAN is published as required by Clause 19-D of the Press Registration or Books Act 186 as Modified in 1956 :

1.	Place of Publication	:	Mathura
2.	Periodicity of its Publication	:	Monthly
3.	Printer's Name, Nationality and Address	:	Alok Kumar, Indian Sadhan Press, Mathura
4.	Publisher's Name, Nationality and Address	:	Alok Kumar, Indian Sadhan Press, Mathura
5.	Managing Editor's Name, Nationality and Address	:	Alok Kumar, Indian Dampier Nagar, Mathura
6.	Name and addres of individuals who own the newspaper and partners or Shareholders holding more than one percent of the Total Capital.	:	Alok Kumar 813, Dampier Nagar, Mathura.

We undersigned hereby declare that the particulars given above are true to the best of our knowledge and belief.

Dated : 10 February 2015 **(Sd.) Alok Kumar**

Publisher & M. Editor

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्र नागपुर का सत्संग कार्यक्रम/भण्डारा

दिनांक	:	4 (सुबह से), 5 एवं 6 अप्रैल 2015
सत्संग स्थल	:	श्री जैन श्वेताम्बर तेरा पन्थी सभा, अनुव्रत भवन, हिवरी नगर, बर्द्धमान नगर, आइनकस के सामने
सम्पर्क सूत्र	:	श्री राम स्वरूप अग्रवाल मो. 09960426555 श्री अनन्त अग्रवाल मो. 09823054397
ठहरने का स्थान	:	लोहाना सेवा मण्डल, हिवरी नगर, महेश्वरी भवन के पास

Licence to Post without Prepayment: Licence No.-AGRA/WPP-01/2015-2017
"Registered" Postal Regd.No.MTR/28/15-17: R.N.I. No- 2358 / 57
Date of Publication: 8th to 15th of every Month

साधन

ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800